



## वर्ण माता का उपकार

फागुण वदी ११ २०३२

दि. २५ मार्च १९७५

नवकार के ज्ञान में मूलभूत उपकार वर्ण-माता का है। लौकिक धर्म में भी शरीर-जननी माता का उपकार माना जाता है, शरीर के बाद अपने ज्ञान-देह को जन्म देने वाली माता वर्णमाता है। वर्णमाता का अपने ऊपर उपकार है। उसकी सहायता बिना आध्यात्मिक व भौतिक दोनों जीवन जीना दुष्कर है। जगत् के समस्त उत्तमोत्तम पुरुषों के नाम, वर्णमाता के वर्णाक्षरों से जुड़े है।

विधि के पालन द्वारा एक लाख नवकार का जाप करनेवाला तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित करता है। नवकार जाप में प्रथम वर्णयोग का आलंबन लेना पड़ता है। गणधर भगवान् ब्राह्मी-लिपि को नमस्कार करते हैं, क्रिया वो ही हो, परन्तु भाव की तरतमता के अनुसार कर्म की निर्जरा घटती-बढ़ती है। जाप द्वारा मन-प्राण व नाडी की शुद्धि होगी, और उसी से आत्मशुद्धि बढ़ती जायेगी।

**नवकार पुण्य जननी माता है।** बचपन में हमें वर्णाक्षर सीखने में इतना आनन्द नहीं आता है, परन्तु आज उसी के फलस्वरूप नवकार के अक्षर व अर्थ को जान अति आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। वर्ण-अर्थ व आलम्बन इन तीनों योगों से नवकार की आराधना करने की है। नवकार आदि के अक्षरों में (न-मो-) मन की स्थिरता वर्णयोग है। जाप में सर्वप्रथम स्थान योग का पालन आवश्यक है। वर्णयोग तथा स्थानयोग में आत्मा की वीर्यशक्ति का उपयोग करना है तथा अर्थयोग-आलंबन योग तथा अनालंबन योग में आत्मा की ज्ञानशक्ति का उपयोग करना है। योग अर्थात् शरीर आदि की प्रवृत्ति की शुद्धि।

नवकार के अक्षरों का ध्यान, अनक्षर आत्मा के ध्यान में ले जाता है। नवकार के ६८ अक्षरों में ६८००० विद्या देवियाँ अधिष्ठान करके रही हुई हैं। नवकार के हर अक्षर में १००० विद्याएँ भरी हुई हैं। वर्णमाता का हर अक्षर मंत्रमय है।

संकल्प अर्थात् भावना बल में कार्य या इच्छा को क्रियान्वित करने की शक्ति रही हुई है। "सवि जीव करुँ शासनरसी" की तीव्र व उत्कृष्ट भावना के कारण ही परमात्मा में यह शक्ति पैदा होती है।



## नवकार और जीवमैत्री

फागुण वदी १२ २०३२

दि. २६ मार्च १९७५

परमात्मा के शासन में ऐसे-ऐसे बेजोड़ अनुष्ठान बताये गये हैं जिनके द्वारा उत्कृष्ट पुण्य-प्रकृति रूप तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना कर सकते हैं। नवकार अनुष्ठान की विशेषता है कि वह आराधक को नवकार स्वरूप बना देता है। **लौकिक पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, परन्तु लोकोत्तर पारस रूप नवकार, लोहे जैसी अपनी आत्मा को पारस रूप बना देता है।** तीर्थंकर नामकर्म निकाचन के अन्य अनुष्ठान-नवपद, वीशस्थानक आराधन, उपधान तप, इन सबका नवकार में समावेश हो जाता है।

**नवकार से उत्कृष्ट पुण्योपार्जन में कारण पंच-परमेष्ठी हैं। वे सर्वोत्कृष्ट है, मंगलमय है और शरण्य है।** नवकार द्वारा करण-करावण व अनुमोदन तथा पुण्य-संवर व निर्जरा का धर्म होता है। जैसे सूक्ष्म बीज में वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति है, वैसे नवकार रूप बीज में मोक्ष-सुख की शक्ति है। जैसे बीज के वपन बिना वृक्ष का प्रारम्भ नहीं होता है वैसे ही नवकार को जीवन में लाये बिना धर्मवृक्ष का विकास नहीं हो पाता है। 'नमो' सुकृत-अनुमोदन और दुष्कृत-गर्हा रूप है। कर्म व पाप का क्षय तथा मंगल का आगमन ही नवकार का उद्देश्य होना चाहिए। सभी अनुष्ठान नवकार के ही पूरक व विस्तार है। नमस्करणीय को किया गया नमस्कार, नमस्करणीय का पद देने में समर्थ है। अरिहन्त को किया गया नमस्कार अरिहन्त पद देने में समर्थ है। नवकार के पाँचों पदों में एक-दूसरे का समावेश हो जाता है। माता-पिता को किया गया लौकिक नमस्कार लोकोत्तर नमस्कार प्राप्त करता है। पुण्य तत्त्व के बिना संवर व निर्जरा सम्भव नहीं है।

**लोकोत्तर धर्म में सर्व प्रथम गुण जीवमैत्री है।** यही समकित की निशानी है। इसकी प्राप्ति दुर्लभ है। अपनी वास्तविक भूमिका को जानने का यह थर्मामीटर है। स्वयं को स्वदेह पर प्रेम है या स्व आत्म तत्त्व पर ? वास्तव में, देहात्म-भाव के कारण हम भूले पड़े हैं। अभी तक हमें अपने देह पर ही प्रेम है। विषय-कषाय की रुचि ही देह-प्रेम की निशानी है यदि स्वात्म तत्त्व पर प्रेम



है तो अवश्य आत्मतुल्य समस्त जीवराशि पर प्रेम उत्पन्न होगा और उनकी रक्षा का प्रयास करेंगे। जीवमैत्री आते ही दीन-दुःखी जीवों पर करुणा भाव, गुणसम्पन्न जीवों के प्रति प्रमोद भाव तथा दोषयुक्त जीवों पर माध्यस्थ भाव पैदा होगा।

जगत् में जीवों के भावों की ३ अवस्थाएँ हैं-उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। जीव की योग्यतानुसार ही उसे धर्म तत्त्व की प्राप्ति होती है। बिना योग्यता के मिली वस्तु अनर्थ पैदा करती है। योग्यता वृद्धि के साथ ही, योग्य पदार्थ की प्राप्ति स्वतः हो जाती है। **वर्णमाता के ५२ अक्षर ज्ञानमाता हैं तथा नवकार के ६८ अक्षर पुण्य माता हैं।**

आगम (चक्षु) की दृष्टि मिलने पर प्रभु की प्रतिमा में साक्षात् प्रभु के दर्शन हो सकते हैं। २० विहरमान तीर्थकर परमात्मा प्रातःकाल की मधुर वेला में प्रतिदिन १ प्रहर देशना देते हैं। जिनके भाषावर्गणा के पुदगल ४ समय में सम्पूर्ण लोक में फैल जाते हैं। उन्हीं शुभ भाषा वर्गणा के पुदगलों के कारण हमें शुभ विचार पैदा होते हैं। जगत् में अनादि से तीर्थकर परमात्मा की उपस्थिति है। सर्वक्षेत्र व सर्वकाल में जीवों को अरिहन्त परमात्मा ही भवसागर से तारते हैं। स्नात्र-पूजा के द्वारा अरिहन्त परमात्मा के च्यवन से निर्वाण तक के पाँचों कल्याणकों को याद कर प्रभु की भक्ति करते हैं, जो अपने लिए महामंगल पैदा करती है।



## परमात्मा व परमात्म नाम

फागुण वदी १३ २०३२

दि. २८ मार्च १९७५

आज तक प्राप्त आध्यात्मिक भूमिका परमात्मा की कृपा से प्राप्त हुई है तथा भविष्य में परमात्मा की कृपा से ही मिलने वाली है। वर्णादि चार माताओं की पहिचान किये बिना अपना विकास सम्भव नहीं है। प्रभु की भक्ति में वैखरी वाणी तथा जाप में मध्यमा वाणी का प्रयोग श्रेष्ठ रहता है। स्तोत्र से जाप, जाप से ध्यान तथा ध्यान से लय का कोटिगुणा फल है। स्तोत्र में तन्मयता प्राप्त किये बिना जाप में तन्मयता सम्भव नहीं है। जाप में तन्मयता बिना ध्यान में तन्मय बन नहीं सकते हैं।

नवकार की साधना द्वारा अनादि से बनी राग-द्वेष की ग्रन्थि का भेद कर सकते हैं। जाप वचन योग है, जिसमें त्रिगुप्ति का पालन आवश्यक है। जाप अर्थात् स्वाध्याय। जो सीधा ध्यान-योग में ले जाता है। मध्यमा से परा व पश्यन्ती वाणी में जाने हेतु यही राजमार्ग है। जाप का उद्देश्य आलम्बन योग में पहुँचने का है। अरिहन्त व अरिहन्त के नाम में भिन्नता नहीं है, इनकी भक्ति से ही अपनी आत्मा का विकास होता है।

अरिहन्त व अरिहन्त का नाम अभेद रूप में है। जैसे घड़ी शब्द बोलने से, प्रथम 'घड़ी' शब्द का बोध होता है, फिर घड़ी के आकार का और फिर उसके स्वरूप का बोध होता है। वस्तु के नाम उच्चारण से तीन रूप में बोध होता है। नाम के उच्चारण से वस्तु के भाव गुण व द्रव्य गुण का ज्ञान होता है। अतः अरिहन्त के नाम से उनके आकार व उनके मूल स्वरूप का भी ज्ञान होता है। नाम व नामी में अभेदता का सम्बन्ध होता है-उन्हें एक-दूसरे से भिन्न नहीं कर सकते हैं। **अरिहन्त के नाम-स्मरण से अपना उपयोग भी अरिहन्त स्वरूप बन जाता है।** हर काल में असंख्यात तीर्थकर नामकर्म निकाचित किये हुए द्रव्य-अरिहन्त देव या नरकगति में हैं। हर काल में साक्षात् तीर्थकर परमात्मा की उपस्थिति रहने की है।

बाह्य चक्षु से जैसे बाह्य संसार के पदार्थों को जान सकते हैं, वैसे ही श्रद्धा व श्रुत चक्षु द्वारा साक्षात् प्रभु के दर्शन कर सकते हैं। मन रुपी विमान को



तत्क्षण सिद्ध-शिला व महाविदेह क्षेत्र में भेज सकते हैं। मनोगत जाप जब अक्षरात्मक मिटकर ध्वन्यात्मक व नादाकार में पैदा होगा, उसी समय परमात्मा के दर्शन कर सकेंगे। प्रभु-प्रतिमा भी साक्षात् प्रभु का ही प्रतिनिधित्व करती है। अतः प्रभु प्रतिमा-दर्शन समय साक्षात् प्रभु-मिलन का हर्ष पैदा होना चाहिए।

अपनी आत्मा में अभी अनेक दोष हैं, गुण का तो अंकुर भी नहीं फूटा है। गुणवृद्धि के साथ-साथ नम्रता का विकास होना चाहिए। जाप, यह प्रभु के साथ तन्मयता लाने का साधन है।

देहाध्यास-देहभाव को भूलने पर ही प्रभु के साथ तन्मयता आ सकती है। देहभाव के नाश से साक्षात् सत्य पदार्थ का ज्ञान होता है। प्रभु की वाणी तो पुष्करावर्त मेघ की तरह त्रिकाल बरस रही है, परन्तु उसको ग्रहण न करने में अपना ही दोष है। अभी तक उसके योग्य पात्र नहीं बन पाये हैं। योग्यता बढ़ाने हेतु जिन-प्रतिमा में साक्षात् परमात्मा के दर्शन करे। अरिहन्त के नाम व अरिहन्त को अभेद रूप मान, उनका ज्यों-ज्यों स्मरण करेंगे, त्यों-त्यों अपनी योग्यता बढ़ती जायेगी।



## धर्मध्यान का प्रारम्भ

फागुण वदी १४ २०३२

दि. २९ मार्च १९७५

**जिनशासन में सर्वोत्कृष्ट पुण्य-प्रकृति तीर्थकर नामकर्म का उदय है,** जिसका बन्ध विधिपूर्वक एक लाख नवकार का जाप करने से भी होता है। जगत् की समग्र जीवराशि को आनन्द देने की शक्ति का सर्जन तीर्थकर नामकर्म बंध के समय होता है। जैसे पुत्र के जन्म से परिवार के सभी सदस्यों को आनन्द होता है, वैसे ही परमात्मा के जन्म-समय समग्र जीवराशि को, यहाँ तक कि नरक के जीवों को भी क्षण भर के लिए सुख का अनुभव होता है। नरक के जीवों को परमात्माओं के कल्याणक समय में सुखानुभव होता है, उनका शेष समय भयंकर दुःख में व्यतीत होता है। 'जगत् के सर्व जीवों को मोक्ष में ले जाऊँ, सभी जीव शासन के रसिक बनें, सभी जीव कर्म से मुक्त बनें' ऐसी उत्कृष्ट भावना के बल से परमात्मा को जीव का कल्याण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

नवकार सम्यक्त्व का बीज है। 'नमो' पद में पाप प्रतिघात व गुण बीजाधान शक्ति है। नवकार-पाप रूपी ईधन को जलाने में अग्नि समान है। नवकार, यह आत्मा रूपी चन्दन वृक्ष से, राग-द्वेष रूपी सर्पों को भगाने में मयूर समान है।

नवकार अपने आत्म-तत्त्व की पहिचान कराता है। जिससे परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है। **जीव में जीवबुद्धि बोधि है और जीव में शिव बुद्धि समाधि है।** जीव का स्वभाव ही ध्यान करने का है। जीव एक क्षण भी ध्यान रहित अवस्था में नहीं रहता है। जीव में शुभ ध्यान का प्रारम्भ धर्म ध्यान से ही होता है। जीव का लक्षण उपयोग-ज्ञान व योग-क्रिया का है। **अष्टांग योगों का समावेश पंचाचार-पालन में हो जाता है।** अनादि से अशुभ ध्यान की ही प्रवृत्ति है, उस अशुभ को शुभ ध्यान में बदलने का साधन धर्म-ध्यान है। शुभ ध्यान में रहने की शक्ति अपनी स्वयं की नहीं, इस हेतु देव-गुरु और धर्म का शुभालम्बन आवश्यक है।

चक्षु के ४ प्रकार हैं - (१) **चर्म चक्षु** चउरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय को मिली



बाह्य दर्शन की शक्ति, जिसकी प्राप्ति अति दुष्कर है। बाह्य नेत्रों द्वारा दर्शन की शक्ति भी जीव के आत्म-प्रदेशों की ही शक्ति है। (२) अवधि चक्षु पंचाचार-पालन से मिली शक्ति, जिससे लोक के अनेक भागों का ज्ञान होता है। (३) केवल चक्षु जिससे त्रिलोक की समस्त वस्तुओं के समस्त पर्यायों को देखने की शक्ति प्राप्त होती है। (४) शास्त्र-चक्षु केवलीकथित वचनों को जानने का एक मात्र साधन है शास्त्र, यह केवलज्ञान का ही अंश है।

**प्रभु के नाम में, प्रभु का सामीप्य पाने की शक्ति है तथा प्रभु-प्रतिमा में परमात्मा का सान्निध्य पाने की शक्ति है।** प्रभु प्रतिमा, प्रभु का ही प्रतिनिधित्व करती है। सामीप्य भाव को जानने से ही सान्निध्य भाव की प्राप्ति होती है। परमात्मा के नाम का आलम्बन लेकर जितने जीव भवसागर से तरते हैं, उतने स्थापनादि से नहीं।

अरिहन्त का 'अ'-अष्टापद, सिद्ध का 'सि'-सिद्धाचल, आचार्य का आ-आबु, उपाध्याय का उ-गिरनार तथा साधु का स-सम्मेतशिखर तीर्थ की याद दिलाते हैं। नाम से प्रभु का सामीप्य, स्थापना से सान्निध्य व द्रव्य से प्रभु सदृश अवस्था का ज्ञान होता है। प्रवचन माता प्रभु के सारूप्य का ज्ञान कराती है। द्रव्य व भाव का कार्य नाम व स्थापना से पूर्ण होता है। नाम व स्थापना से परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है।

फागुण वदी ३० २०३२

दि. ३० मार्च १९७५

नवकार की विधिपूर्वक आराधना, आराधक को तीर्थपति बनाती है। जापवृद्धि के साथ पुण्यवृद्धि तथा पुण्यवृद्धि से आत्मशुद्धि होती है। जाप से प्राण-चित्त-वचन और काया की भी शुद्धि होती है। चित्त की शुद्धि से चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है। जैसे तीव्र क्षुधा के समय भोजन प्रिय लगता है, वैसे ही जिसे आत्मानुभव की तीव्र भूख लगी हो, उसे जाप प्रिय लगता है। जाप उसी को प्रिय लगता है जिसे मोक्ष पर प्रेम जगा है।

कर्मबंधन का कारण अज्ञान-अविद्या व मिथ्यात्व है। जब तक क्षीणमोह नामक १२ वाँ गुणस्थानक न आवे, तब तक मिथ्यात्व का उदय सम्भव है। क्योंकि कषाय उपशान्त हुए हैं, सम्पूर्ण नष्ट नहीं हुए हैं। स्वयं को दोषरहित मानना मिथ्यात्व व माया मृषावाद है।

परमात्मा-प्ररूपित एक-एक सूत्र के अनन्त अर्थ होते हैं। मंत्रों में महा-शिरोमणि नमस्कार महामंत्र है। नवकार के प्रति प्रेम हुए बिना दुनिया के समस्त मंत्रों की सिद्धि निरर्थक है। ओं अर्ह, आदि भी नवकार के ही संक्षिप्त रूप हैं। दुनिया के सब मंत्रों में अर्ह व्याप्त है। एक 'अर्ह' की सिद्धि से समस्त मंत्रों की सिद्धि हो जाती है। 'अ' से 'ह' तक के वर्ण मंत्रमय हैं। अक्षर बिना का कौनसा मंत्र है ?

संसार का मूल स्व अज्ञान है। स्व अज्ञानता को स्वीकार किये बिना गुरु की प्राप्ति नहीं होती है। गुरु की प्राप्ति बिना प्रभु का शरण व उपासना सम्भव नहीं है।

केवलीकथित वचनों को शास्त्र-चक्षु द्वारा जान सकते हैं। सीमन्धर स्वामीजी के मुख से इन्द्र ने जो निगोद का सूक्ष्म स्वरूप जाना। वही सूक्ष्म-स्वरूप भरत क्षेत्र में रहे कालिकाचार्य के मुख से जानकर इन्द्र को आश्चर्य हुआ। अरिहन्त परमात्मा के समान निगोद के सूक्ष्म-स्वरूप का वर्णन कालिकाचार्य शास्त्र-चक्षु के आधार पर ही बता सके थे। सूक्ष्म-निगोद के जीव १४ राजलोक के सम्पूर्ण क्षेत्र में टूस टूस कर भरे हुए हैं।

अज्ञान का जितने अंश में क्षय होता है, उतने अंश में श्रुतज्ञान प्रकट होता है। अज्ञान का ध्यान ही आर्त व रौद्र ध्यान है तथा ज्ञान का ध्यान ही धर्म व शुक्ल ध्यान है। धर्म ध्यान के चार भेदों में प्रथम भेद-आज्ञाविचय अर्थात् प्रभु-



आज्ञा का ही विचार । आर्तध्यान अर्थात् स्वसुख की प्राप्ति व स्व दुःख के नाश का विचार । रौद्र ध्यान अर्थात् स्व दुःख के नाश हेतु पर-पीड़ा का तीव्र विचार तथा अनन्तानुबन्धी कषाय के परिणाम । धर्म ध्यान का प्रारम्भ जिनाज्ञा से होता है । 'सबसे जीवा न हन्तव्या' 'जिसको तू मारता है वह और कोई नहीं, तू स्वयं ही है' । तू पर को पीड़ा देकर स्वयं के ही दुःख का सर्जन करता है । **सर्व जीवों का हित-चिन्तन-मैत्री भाव शुभ ध्यान है** । शुभ ध्यान में आत्म स्वरूप की विचारणा है । आत्म स्वरूप को जानकर, सर्व जीवों को स्व समान मानकर, उनके साथ अपने आत्म-तुल्य व्यवहार करे-ऐसी योग्यता आने पर ही धर्म-ध्यान के विकास के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं । धर्म-ध्यान में जगत् (विश्व-स्वरूप), जीव तथा जगदीश (शुद्धात्म-स्वरूप) का विचार किया जाता है तथा शुक्ल ध्यान में आत्मा के द्रव्य-गुण व पर्याय का चिंतन किया जाता है ।

किसी वस्तु को जानने हेतु उसके समस्त धर्मों को जानना आवश्यक है । सर्ववस्तुओं को जानने हेतु एक वस्तु को जानना आवश्यक है तथ एक को जानने के लिए सर्ववस्तुओं को जानना आवश्यक है । वस्तु की जानकारी के बाद उसके हेय-उपादेय का विचार करे । और उनके अनुसार वर्तन करे । प्रभु-आज्ञा के पालन हेतु मैत्रीभाव पैदा करना आवश्यक है । वस्तु के विषय-पदार्थ का विचार ही ध्यान है-चाहे वह शुभ हो या अशुभ । इस प्रकार अपने पठन-पाठन व श्रवण का भी अपने शुभाशुभ ध्यान पर असर पड़ता है । मात्र अन्तर्मुहूर्त के आयुष्य में किसी भी प्राणी की हिंसा न करने पर भी, रौद्र ध्यान की उत्कृष्टता के कारण तंदुलिया मत्स्य मरकर ७वीं नरक भूमि में चला जाता है । मात्र कुछ क्षणों के इस अशुभ ध्यान में ७ वीं नरक के दुःख सर्जन की ताकत रही हई है । जैसे अशुभ ध्यान में ७वीं नरक तक के दुःख देने की शक्ति है, उससे भी अधिक-शक्ति शुभ ध्यान में सुख देने की है । क्षण मात्र के शुक्ल ध्यान से प्रसन्नचन्द्र राजर्षि, ७वीं नरक में गिर रहे होने पर भी केवलज्ञान को प्राप्त कर सके ।

चिन्तन व भावना ध्यान ही है । शुभ ध्यान द्वादशांगी का सार है । जैसे भोजन करने से तृप्ति होती है, वैसे ही शुभ-ध्यान में रहे तो आत्मा के मूलगुण प्रकट होते हैं । परमात्मा का नाम व परमात्म-द्रव्य एक दूसरे से जुड़े हैं । अरिहंत की शक्ति अरिहंत के नाम में है । भक्त की सदा यही प्रार्थना रहती है कि हे प्रभो ! आप इतने महान् होने पर भी मेरे हृदय में समा जाते हैं तो मैं तो छोटासा हूँ, अतः मैं आपके हृदय में क्यों न समाऊँ ! अर्थात् यदि हम परमात्मा को अपने हृदय में बसायेंगे तो हम भी अवश्य परमात्मा के हृदय में स्थान पा सकेंगे ।

चैत्र सुदी ११ २०३२

दि. ३१ मार्च १९७५

जिनाज्ञा-आराधन के फल का अनुभव इस काल में भी सम्भव है । नवकार का जाप, ध्यान योग में पहुँचने की पगडण्डी है । नाम व वस्तु का एकमेक सम्बन्ध होता है । जैसे अपने को बुरा-भला कहने पर प्रत्यक्ष दुःख का अनुभव होता है तथा अपनी प्रशंसा करने पर प्रत्यक्ष हर्ष का अनुभव होता है । इसका कारण है कि हमारा नाम व हम एकमेक बने हुए हैं । उनको भिन्न नहीं कर सकते हैं, वैसे ही प्रभु के नाम का प्रभु के साथ सम्बन्ध है ।

जीव को ज्ञान के अनुसार ही ध्यान होता है । प्रत्येक तीर्थंकर परमात्मा, पूर्व में हुए तीर्थंकरों के ध्यान में तन्मयता प्राप्त कर तथा भक्ति करके ही तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित करते हैं । भक्त की जितनी अधिक तीव्र इच्छा प्रभु-मिलन की होती है, उतनी जल्दी ही उसे प्रभु की प्राप्ति होती है । लक्ष्य में स्थिर बन कर, शेष सभी को भूल जावे तभी आत्मज्योति का विकास हो सकता है ।

जैसे धनुर्विद्या में प्रथम लक्ष्य-निर्धारण आवश्यक है, वैसे नवकार जाप में भी लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक है । चित्त की प्रथम विक्षिप्त अवस्था को पार करने पर ही यातायात अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं । अरिहंत के ध्यान सिवाय शेष सबको भूल जाय, तभी यह सम्भव है । **चित्त की निर्मलता से ही चित्त में स्थिरता प्राप्त होती है** । आर्त रौद्र ध्यान को निकाले बिना चित्त में धर्मध्यान नहीं आ सकता है ।

भौतिक प्रवृत्तियों से निवृत्ति होने पर ही जाप में स्थिरता आ सकती है । जाप-प्रारम्भ के पूर्व जैसी प्रवृत्ति करेंगे, वैसे ही विचार जाप समय पैदा होंगे, अतः जाप में स्थिरता लाने हेतु जाप के पूर्व प्रभु-भक्ति, आत्मरक्षा कर लेनी चाहिए । **एक क्षण का भी मन की एकाग्रतापूर्वक ध्यान अनन्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ है** ।

तत्त्व व तर्क का मेल नहीं है । तत्त्व-प्राप्ति हेतु तर्क का त्याग करना पड़ता है । तत्त्व की प्राप्ति हेतु गुरु के प्रति श्रद्धा आवश्यक है । भक्त, भगवान के गुणचिन्तन तथा नामस्मरण द्वारा परमात्मा के भाव स्वरूप को अपने हृदय में ला सकता है । द्रव्य क्रिया, प्रभु-भक्ति, प्रभु-पूजा आदि के बिना प्रभु के भाव स्वरूप को हृदय में नहीं लाया जा सकता है ।



चैत्र सुदी २ २०३२

दि. १ एप्रिल १९७५

जगत् की हर वस्तु अनन्त धर्मों से युक्त है। वह वस्तु जगत् की अन्य वस्तुओं से संकलित होती है। अतः एक वस्तु के सम्पूर्ण ज्ञान के लिए सर्व वस्तुओं का ज्ञान आवश्यक है। जीवन में आध्यात्मिक विकास हेतु परमात्मा ने विभिन्न अनुष्ठान व साधनाएँ बताई हैं, परन्तु एक बात का विशेष ध्यान रखे कि जब एक प्रवृत्ति या साधना चल रही हो तो दूसरी साधनाओं को गौण बना दे। चालू साधना में ही लक्ष्य देकर मन को एकाग्र बनाए। चालू-क्रिया के समय दूसरी प्रवृत्ति में मन जाएगा तो न तो चालू-क्रिया की साधना अच्छे ढंग से हो सकेगी और न ही दूसरी क्रिया की। अतः यह बात ख्याल में रखे कि जिनवाणी श्रवण के समय जाप न करे। तथा जाप के समय अन्य श्रवण न करे। जिस समय जो प्रवृत्ति चालू हो, उसी में मन को पिरोवें। साधना हेतु एक बात और ध्यान में रखें और देखें कि मेरे लिए कौनसी प्रवृत्ति उचित है। अपने योग्य तथा अपनी शक्ति के अनुसार साधना होने पर ही हमें साधना में सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है। जैसे एक रोग के निदान की भिन्न-भिन्न दवाइयाँ बताई हैं, परन्तु अपने लिए वही दवाई उचित है, जो हमें अपने योग्य डॉक्टर प्रदान करे।

प्रत्येक वस्तु में नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव, ये ४ निक्षेप रहते हैं। इन ४ निक्षेपों का वस्तु में एकमेकता की तरह सम्बन्ध है। जैसे धर्म व धर्मों को अलग नहीं कर सकते हैं, वैसे ही प्रभुनाम व प्रभु को अलग नहीं कर सकते हैं। जैसे **स्वर्ण तथा स्वर्ण के पीलेपन में अभेद सम्बन्ध है, वैसे ही परमात्मा व उनके नाम के बीच अभेद सम्बन्ध है।** बाह्य चक्षु बिना जैसे बाह्य वस्तु के लक्ष्य को जाने नहीं सकते हैं, वैसे ही ज्ञान रूपी नेत्र के बिना ध्यान रूपी लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। **'नमो अरिहंताण'** में अरिहंत नाम रूप में अरिहंत है। प्रभु-प्रतिमा स्थापना रूप में अरिहन्त है। भूत-भावी के तीर्थकर श्रेणिक महाराजा और महावीर परमात्मा (वर्तमान की अपेक्षा से) द्रव्य अरिहन्त हैं तथा समवसरण में देशना देते हुए तथा पृथ्वी पर विचरने वाले भाव अरिहन्त हैं। नाम व स्थापना के ज्ञान बिना वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सकते हैं। नाम उच्चारण के साथ ही उस वस्तु का अपने साथ के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। परमात्मा के नाम-स्थापना व द्रव्य स्वरूप के आलम्बन से ही परमात्मा के भाव-स्वरूप की प्राप्ति होती है।

वस्तु का सत्य स्वरूप परमात्मा ही बताते हैं। परमात्मा ने वस्तु के सम्पूर्ण सत्य को पहिचाना है अतः उनकी आज्ञा ही परम धर्म है- **'जिनाज्ञा परमो धर्मः'**। श्रुतज्ञान का फल केवलज्ञान है। अरिहन्त-परमात्मा भी देशना देने हेतु श्रुतज्ञान का उपयोग करने है। वर्णमाता-५२ अक्षरों की ही सहाय लेनी होती है। ये ५२ अक्षर सर्व मंत्रमय हैं। द्वादशांगी भी इन्हीं ५२ अक्षरों से बनी है।

परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति का संकलन उनके नाम के साथ भी है। भले ही परमात्मा का भौतिक देह विलीन हो गया हो, परन्तु उनका गुणदेह तो सदा है। परमात्मा ने अपने पाये हुए गुणों को सदा बांटने का ही प्रयास किया है। अति दुःखमय संसार में भी, जिसे परमात्मा जैसे नाथ प्राप्त हो गये, उसके लिए दुःख टहर नहीं सकता। यह संसार अति दारुण व भयंकर महासागर है जिसको पार पाना, अति कठिन है। ऐसे संसार रूप महासागर से भी पार पाने हेतु तीर्थ रूप जहाज की हमें प्राप्ति हुई है। यह तीर्थ रूप जहाज छिद्रों से रहित है तथा इसके कप्तान अरिहन्त परमात्मा हैं, जो इस जहाज को चलाने में अति कुशल कप्तान हैं। अतः इस तीर्थ रूप वाहन में बैठने वालों के लिए संसार-समुद्र से पार पाने में कोई कठिनाई नहीं है।

टाणांग सूत्रानुसार चेतना लक्षण से सभी जीव एक समान है। आत्मा के एकत्व स्वरूप को जानने के बाद वैसा ही आत्मतुल्य व्यवहार करना चाहिए। जीव का शुद्ध स्वरूप परमात्म स्वरूप है। परमात्मा के स्वरूप ज्ञान से अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान होगा। अपने आत्म-स्वरूप को पाने हेतु प्रथम परमात्म-स्वरूप को पाये हुआ के प्रति प्रीति व भक्ति पैदा होना आवश्यक है। **स्पष्ट है- भक्त हुए बिना भगवान नहीं बन सकते हैं। शिष्य बने बिना गुरु नहीं बन सकते हैं।**

व्याख्यान-श्रवण का उद्देश्य परमात्म-प्ररूपित तत्त्वों पर श्रद्धा करना तथा इच्छायोग को पैदा करना है। इच्छायोग के बिना धर्म नहीं करा सकते हैं। धर्म बलात्कार से कराने की वस्तु नहीं है। उस हेतु इच्छायोग परम आवश्यक है। भूख से अधिक खाया हुआ भोजन, जैसे अजीर्ण करता है वैसे ही बिना इच्छा के दिया उपदेश लाभकारी नहीं होता है। उपदेश में श्रोता की जिज्ञासा आवश्यक है। इसीलिए व्याख्यान में श्रोताओं की जिज्ञासानुसार ही तत्त्व की विचारणा की जाती है।

स्थानयोग अर्थात् कायिक-प्रवृत्तियों का निरोध अर्थात् काया की स्थिरता,



कायगुप्ति का परिपालन । स्थानयोग में स्थिरता लाने हेतु मन व इन्द्रियों का दमन आवश्यक है । इस हेतु सात्त्विक व परिमित आहार लेना चाहिए । विषय-कषाय को कम किये बिना आसन में स्थिरता नहीं आ सकती है । चैत्यवन्दन की मुद्राएँ, कायोत्सर्ग की मुद्राएँ तथा जाप की पद्मासन आदि मुद्राएँ स्थानयोग है । परमात्मा का जितने रूप में कायिक-मानसिक व वाचिक गुणानुवाद व बहुमान होगा, उतनी ही मात्रा में अपने में गुणों का विकास होगा । परमात्मा की कायोत्सर्ग-पद्मासन आदि मुद्राओं के पालन से परमात्मा का बहुमान होता है । संसारी आत्मा के आत्म-प्रदेश उसकी मन-वचन-काया की प्रवृत्ति में बँटे हुए हैं । मन-वचन-काया की प्रत्येक प्रवृत्ति में कर्म-बंध होता रहता है ।

**स्थानयोग में स्थिरता हेतु परमात्मा के पिंडस्थ स्वरूप का ज्ञान, वर्णयोग में एकाग्रता हेतु परमात्मा के पदस्थ स्वरूप का ज्ञान, अर्थयोग में तन्मयता हेतु परमात्मा के रुपस्थ स्वरूप का ज्ञान, आलम्बन योग में निश्चलता हेतु परमात्म-प्रतिमा का ज्ञान तथा अनालम्बन योग में पहुँचने हेतु परमात्मा के भाव स्वरूप का ज्ञान व चिन्तन आवश्यक है । परमात्मा के स्वरूप ज्ञान व चिन्तन से मन की स्थिरता बढ़ती जाती है ।**

परमात्मा-महावीर प्रभु, सर्वजीवों के कल्याणक के उद्देश्य से स्वयं के निर्वाण के बाद भी अपना नाम रूप मंत्र व स्थापना रूप प्रतिमा मध्यलोक में छोड़कर गये हैं । परमात्मा ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति भरतक्षेत्र के वासियों के लिए छोड़ दी है । अभयकुमार द्वारा प्रेषित प्रभुप्रतिमा के दर्शन कर आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और अन्त में उन्होंने आर्यदेश में आकर दीक्षा ग्रहण की । परमात्म-प्रतिमा अनेक भव्य जीवों को बोध पाने में निमित्त बनी है ।

वास्तव में, ज्ञानी कहते हैं, परमात्मा व परमात्म-प्रतिमा एक ही हैं । हेमचन्द्राचार्यजी प्रभुस्तुति में लिखते हैं कि-

**‘गुणाधिरूपेण ममापि साक्षात् ।’**

अर्थात्-हे परमात्मा ! भले ही आप संसार से मुक्त हो गये हो, परन्तु मेरे विशुद्ध चित्त में तो आपका साक्षात् दर्शन होता है, क्योंकि मेरा चित्त आपके गुणों में एकाग्र बन गया है ।

जैसे सूर्य आकाश में रहते हुए भी सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, वैसे ही सिद्ध परमात्मा सिद्ध-शिला में रहते हुए भी सम्पूर्ण लोक को ज्ञान का प्रकाश देते हैं । सम्पूर्ण ज्ञान के भंडार परमात्मा के दर्शन अपने विशुद्ध चित्त में अवश्य कर सकते हैं ।

**सम्पूर्णमंडल-शशाङ्ककलाकलाप, शुभ्राःगुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।**

अर्थात्-हे जगदीश्वर ! पूर्णिमा के चन्द्र समान उज्ज्वल आपके गुण त्रिभुवन को भी लांघ जाते हैं ।

चन्द्रप्रकाश की तरह प्रभु-मुख मुद्रा सर्वदर्शकों के चित्त को मोह लेती है । परमात्मा की उपस्थिति जगत् में सदाकाल है । परमात्मा के चारों निक्षेप जगत् के जीवों का उद्धार करने में लगे हैं । परमात्मा को परोपकार का ही महाव्यसन लगा हुआ है, उन्होंने अपने चारों निक्षेप इसी संसार में छोड़ दिये हैं । मोक्षगमन बाद भी अपने नाम आदि का आलम्बन देकर संसारी जीवों को संसार से मुक्त कराते हैं ।



चैत्र सुदी ३ २०३२

दि. २ एप्रिल १९७५

परम पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज शास्त्रों के सार रूप कहते हैं कि **जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति ही परम आनन्द का बीज है** । परमात्मा के प्रति भक्ति प्रगट करने के लिए नवकार का यह अनुष्ठान है । चौदह पूर्व का सार नवकार है । ध्यान योग की पराकाष्ठा मोक्ष का अनन्तर कारण है । महावीर परमात्मा ने घाती कर्मों के क्षय के लिए 12½ वर्ष तक तप किया था । 12½ वर्ष तक मौन व ध्यान की अपूर्व साधना के बल पर ही महावीर परमात्मा ने केवलज्ञान प्राप्त किया ।

**जीव-मैत्री, अहिंसा मूल गुण है तथा क्षमा उत्तर गुण है । अहिंसा अर्थात् जीवों के प्रति आत्म-तुल्य व्यवहार । जैसे मुझे सुख व पसन्द हैं, वैसे ही सर्व जीवों को भी सुख पसन्द है ।**

सर्व जीवों को अभय देने पर हम स्वयं निर्भय बन जायेंगे ! सर्व जीवों के प्रति आत्म-तुल्य व्यवहार रखने पर अपनी भी रक्षा होगी ! अहिंसादि मूल गुणों को प्राप्त किये बिना क्षमादि उत्तर गुणों की प्राप्ति सम्भव नहीं है । अन्य जीव को पीड़ा देना भव-भ्रमण का मूल है तथा अन्य जीव-रक्षा ही भव-भ्रमण का अंत करने वाली है !

भव पर निर्वेद पैदा हो, भव पर अरुचि जगे-इसी संकल्प के साथ नवकार का जाप करना है । जितना संकल्प बल तीव्र होगा, उतना अधिक उसका फल होगा ! नवकार जाप से, नवकार के आराधक का तो भवभ्रमण रुकता ही है, परन्तु साथ में वह अनेक जीवों के भव-भ्रमण को रोकने की शक्ति पाता है । नवकार का आराधक सर्वश्रेष्ठ ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित कर सकता है, जिसमें आराधक स्वयं मोक्ष प्राप्त करता है, साथ में अनेक भव्यात्माओं को संसार-सागर से तिराने हेतु तीर्थ रूपी जहाज का आलम्बन देता है ।

शाश्वत नवकार, शाश्वत पद प्रदान करता है । शाश्वत नवकार का जाप त्रिलोक में अबाधित रूप से चालू है । नवकार भव-भ्रमण का क्षय करता है ऐसे महाप्रभावशाली नमस्कार-महामंत्र की प्राप्ति इस संसार में अति दुर्लभ है । नमस्कार-महामंत्र की प्राप्ति पुण्य के संचय व कर्म-क्षय बिना नहीं होती है । पंच-

परमेष्ठी नवकार को प्राप्त करने हेतु-सद् बुद्धि, सद्विचार व सद् आचार अत्यन्त आवश्यक हैं । सद्बुद्धि प्राप्त हुए बिना सद्विचार व सद्आचार की प्राप्ति असंभव है ! सद्बुद्धि की प्राप्ति संत पुरुषों के समागम व सत् साहित्य के वाचन से होती है ! सत्संग व सद्वाचन से जीव में जीव बुद्धि व जीव में शिव-बुद्धि पैदा होती है ।

‘‘मैं कौन हूँ’’-‘‘मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है’’-ऐसा ज्ञान नवकार की आराधना से होता है । देहात्मबुद्धि का हास व आत्मबुद्धि का विकास नवकार से होता है । नवकार-यह महान् अध्यात्म योग है । नवकार में ८ योगों का समावेश हो जाता है । योग अर्थात् मोक्ष के साथ जोड़ना नवकार की सुन्दर आराधना हेतु ५ योग बताये हैं । योग यह महान् आध्यात्मिक धर्म है । चैत्यवंदनादि समस्त क्रियाओं में ५ योगों का समावेश है ।

पूर्व में की गई आराधना के कारण हमें उत्तम-आलम्बनों की प्राप्ति हुई है । विश्व के समस्त योगों का समावेश इन पाँच योगों में हो जाता है । पूजा भी एक महान् योगक्रिया है । जिनशासन का एक पद ‘नमो अरिहंताणं’ भी मोक्ष देने में समर्थ है । लक्ष्य-निर्धारण के बाद उसको सिद्ध करना शेष है ।

शान्तिनाथ भगवान के स्तवन में पूज्य यशोविजयजी म. यह स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ‘‘इतने दिन में नाहि पिछान्यो, मेरो जनम गयो अजान में’’ महावीर परमात्मा के निर्वाण के २५०० वर्ष पूर्ण होने पर भी हमें जो आत्मिक-विकास की अनुकूल सामग्रियाँ मिल रही हैं, इसमें परमात्मा महावीर के तीर्थ का ही उपकार है ! अध्यात्म योग में देव-सेवा, जाप व तत्त्व-चिन्तन का समावेश हो जाता है । देवसेवा से काया स्थिर व पवित्र बनती है । सिर्फ काया की स्थिरता तो बिल्ली व बगुले में भी होती है । अतः स्थिरता के साथ-साथ पवित्रता भी आवश्यक है । जाप अर्थात् देव-स्तुति-परमेष्ठी-स्मरण-‘शिर तुज आण लहुँ’ अर्थात् हे परमात्मा ! मैं आपकी आज्ञा सिर पर चढ़ाता हूँ जाप से पाप का नाश होता है, और पापनाश से परमात्म-अनुग्रह प्राप्त होता है । जाप से तत्त्व-चिन्तन की प्राप्ति होती है ।







## आत्म की तीन दशाएँ

चैत्र सुदी ४ २०३२

दि. ३ एप्रिल १९७६

तीर्थ व तीर्थपति में अभेदता का सम्बन्ध है। तीर्थपति अर्थात् तीर्थकर परमात्मा की अनुपस्थिति में तीर्थ ही उसका प्रतिनिधित्व करता है। परमात्मा की द्रव्य व भाव अवस्था भी परमात्मा का ही प्रतिनिधित्व है। प्रत्येक आराधक का मूलभूत उद्देश्य परमात्म मिलन का होता है। परमात्मा-मिलन अर्थात् आराधक परमात्मा को देखे। मात्र बाह्य चक्षुदर्शन से ही परमात्म-मिलन मान लेना उचित नहीं है। बाह्य नेत्र से प्रभु-दर्शन तो ३६३ पाखण्डी भी करते थे, परन्तु परमात्मा को, परमात्मा के रूप में श्रद्धा न करने के कारण ही उनका मिलन सार्थक नहीं था।

जीव की ३ अवस्थाएँ हैं-(१) बहिरात्म दशा (२) अन्तरात्म दशा और (३) परमात्म दशा। अपनी अनादिकाल की अवस्था बहिरात्म रूप है। बहिरात्मा अर्थात् देह में ही आत्मबुद्धि। देहात्म भाव को नष्ट किये बिना अन्तरात्म भाव पैदा नहीं होता है। अन्तरात्म भाव अर्थात् जीव में जीवबुद्धि। देहाध्यास के नाश से ही परमात्मा के प्रति दास भाव पैदा हो सकता है। परमात्मा के प्रति दास भाव पैदा हुए बिना प्रभु-मिलन की कल्पना व्यर्थ है। क्षुधा की तृप्ति मात्र भोजन बनाने से नहीं होती है, उस हेतु भोजन करना अत्यावश्यक है। वैसे ही प्रभु का दर्शन-दर्शन रटने मात्र से प्रभु-दर्शन नहीं हो पाता है, उस हेतु प्रभु-आज्ञा का पालन अत्यावश्यक है। प्रभु-मिलन के उद्देश्य से ही प्रतिदिन (५०००) नवकार का जाप करना है। जैसे स्वच्छ दर्पण में सामने रही वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ता है वैसे ही शुद्धात्मा रूपी दर्पण में अपना वास्तविक प्रतिबिम्ब पड़ता है।

वस्तु के स्मरण के साथ ही अपने उपयोग में वैसा ही प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। जिस वस्तु का हम चिन्तन-मनन व ध्यान करेंगे, वैसा ही अपना उपयोग बन जाएगा। ३६३ पाखण्डी प्रतिदिन प्रभु महावीर परमात्मा के मुख से तत्त्व सुनते थे, परन्तु उनकी श्रद्धा व उपयोग उसमें न होने के कारण वे प्रभु-मिलन नहीं कर पाते थे। प्रभु-मिलन हेतु श्रद्धा व बोधि की प्राप्ति आवश्यक है।

जब तक शिव में शिवबुद्धि न आवे, तब तक जीव में जीव-बुद्धि व जीव

में शिवबुद्धि असम्भव है। जब तक परम पद को पाये हुए परमात्मा पर श्रद्धा नहीं है, तब तक संसारी जीव में जीव व शिवबुद्धि कैसे पैदा हो सकती है? तत्त्व-चिन्तन की प्राप्ति मानव भव में श्रावक कुल में सम्भव है। इसी तत्त्व-चिन्तन-प्राप्ति की महत्ता के कारण इन्द्र भी मानव भव को चाहता है।

सर्व जीवराशि जीव तत्त्व चैतन्य रूप मूलगुण की अपेक्षा एक समान है। सर्व जीवों को शासनरसिक बनाने की उत्कृष्ट भावना वाले परमात्मा का दास बनने में कितना बड़ा लाभ है! जीवराशि के कल्याण की परमात्मा की कितनी उच्च भावना!

मुनिसुव्रत स्वामी भगवान ने मात्र एक घोड़े को समकित देने हेतु, एक ही रात्रि में ६० योजन का विहार किया था। परमात्मा के समवसरम में चार गति के जीवों में से नरक सिवाय तीन गति के जीव उपस्थित रहते हैं। जीव, शासनरसिक बनने का पुरुषार्थ करें या न करें, परन्तु परमात्मा की भावना तो सबको तारने की होती है। परमात्मा की दृष्टि तो उपसर्ग करने वाले कमठ व सेवा करने वाले धरणेन्द्र पर भी समान होती है। परमात्मा समुद्घात के चौथे समय में सम्पूर्ण राजलोक में व्याप्त हो जाते हैं। 'दासोऽहं'-परमात्मा के सामने दास समान रहने पर ही हम अपनी वर्तमान स्थिति में आगे बढ़ सकते हैं।

देहाध्यास के त्याग हेतु परमात्म-भक्ति आवश्यक है। अपने उपयोग में परमात्मा को लाना यही परमात्म-मिलन है। अपना उपयोग जब-जब परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है, तब-तब प्रभु-मिलन का आनन्द अनुभव कर सकते हैं। प्रभु के द्रव्य-गुण व पर्याय के चिन्तन से भी आत्मानन्द का अनुभव कर सकते हैं। परमात्मा के नाम आदि ४ निक्षेप शुभालम्बन हैं। ध्यान हेतु प्रतिमा एक श्रेष्ठ आलम्बन है।

अपना व परमात्मा का मूल स्वभाव एक है अतः परमात्मा के ज्ञानादि गुणों के चिन्तन से अपने ही आत्म-गुणों का प्रकटीकरण होता है। स्वयं के गुण कर्मों के कारण ढके हुए हैं, अतः उन्हें प्रगट करने के लिए परमात्मा की शरण आवश्यक है। 'जिन ! तेरे चरण की शरण ग्रहूँ !' स्पष्ट है, भवसागर से तरने हेतु परमात्म-शरण आवश्यक है। प्रभुचरण अर्थात् प्रभु आज्ञा। सम्यक्-चारित्र के आस्वादन से संसार के सुख तृणवत् लगते हैं। इसी कारण शांतिनाथ चक्रवर्ती ने भी अपने चक्रवर्ती पद को छोड़ चारित्र मार्ग ग्रहण किया था। कर्म अपने को नहीं बांधता है, बल्कि हम स्वयं अपनी प्रवृत्ति द्वारा उसे बाँधा देते हैं। धर्म की शरण में जाते ही कर्म अपने से छूटते जायेंगे।



चैत्र सुदी ४ २०३२

दि. ४ एप्रिल १९७६

जीव में रही ज्ञान शक्ति को धर्म प्रकट करता है। सम्यग्दर्शन के प्रकट होने पर मोह का नाश होता है तथा मोह के नाश व सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से आत्मतत्त्व का ज्ञान होता है। परमात्मा अपने ऊपर सबसे अधिक उपकार करते हैं। वे अपनी अज्ञान दशा को दूरकर ज्ञानदशा प्राप्त कराते हैं। जीव में अनादि से ३ दोष भरे हुए हैं- (१) राग, (२) द्वेष, (३) मोह। इन दोषों के कारण चेतनस्वरूप जीव भी जड़ता का अनुभव करता है, और इससे उसकी बुद्धि भी जड़बुद्धि बन जाती है और इसका परिणाम यह आता है कि वह स्वयं को पहिचान नहीं पाता। जैसे-सिंह का बच्चा जन्म से भेड़ों के समूह में रहने पर स्वयं को ही भूल जाता है और भेड़ की तरह कमजोर बन जाता है। वैसे ही अपनी आत्मा चेतनस्वरूप शक्तिशाली होने पर भी पुद्गल के समूह में रहने के कारण जड़ता का अनुभव करती है। जब तक भेड़ों के समूह में रहा वह सिंह-शिशु, अपने आपको पहिचान नहीं पाता है, तब तक वह भेड़ की तरह कमजोर ही बना रहता है। वैसे ही अनन्त शक्तिशाली चेतन स्वरूप अपनी आत्मा जब कर्मरहित अरिहन्त परमात्मा के स्वरूप को नहीं देखती है, तब तक वह जड़ता का ही अनुभव करती है।

जीव अपनी मोह दशा के कारण संसार में भ्रमण करता है। मोह के कारण जीव स्व-स्वरूप को जान नहीं पाता है। इस हेतु आत्मा पर रहे हुए राग-द्वेष व मोह रुपी मैल को साफ करना आवश्यक है। राग-द्वेष व मोह के नाश हेतु धर्म की शरण आवश्यक है। **धर्म की प्राप्ति-हेतु सुकृत अनुमोदन, दुष्कृतगर्हा व चतुः शरण-गमन आवश्यक है।**

आत्मा व परमात्मा की पहिचान हेतु आत्मा व परमात्मा को भिन्न करने वाले तत्व को पहिचानना आवश्यक है। आत्मा को परमात्मा से भिन्न करने-वाला अपना कर्म है, जिसका बंध राग-द्वेष व मोह के कारण होता है। राग-द्वेष व मोह के कारण परमात्म-मिलन नहीं हो पाता है। राग-द्वेष व मोह का नाश करने हेतु जाप व अनुष्ठान आवश्यक है। परमात्म-प्ररूपित सभी अनुष्ठान

आत्मा व परमात्मा के बीच के अन्तर को तोड़ने के लिए हैं।

प्रत्येक अनुष्ठान सुकृत-अनुमोदन, दुष्कृतगर्हा व शरण-गमन से युक्त है। नवकार के जाप से आत्म-गुणों की पुष्टि होती है तथा जिनवाणी-श्रवण से आत्मा की निर्मलता व तन्मयता होती है। **स्थिरता तो निर्मलता की दासी है। बिना निर्मलता के आई हुई स्थिरता नुकसान करती है।** निर्मलता रहित स्थिरता तो बिल्ली को भी आती है। आत्मा की निर्मलता के बाद प्राप्त स्थिरता ही लाभकारी होती है। धर्मध्यान व शुक्लध्यान के बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जैसे-शक्कर को चखे बिना मिठास का अनुभव नहीं कर सकते हैं, वैसे ही परमात्म-मिलन हेतु जाप व ध्यान के स्वाद बिना परमात्म-मिलन का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

दुष्कृत-गर्हा हेतु स्वदोष को जानना व पहिचानना आवश्यक है। स्वदोष को जानने हेतु गुरु की निश्चा आवश्यक है, क्योंकि गुरु बिना स्वदोष को स्वयं नहीं जान सकते हैं। दुष्कृत-गर्हा अर्थात् स्वकृत समस्त अपराधों की क्षमा-याचना! प्रतिदिन अपने द्वारा कितने पापों का सेवन होता है। प्रतिदिन कितने जीव अपने पैरों से दबते हैं। अनादिकाल से प्रतिदिन १८ पापों का सेवन करते आये हैं। एक-एक पाप का अनंत बार सेवन किया है, अतः उनकी गर्हा आवश्यक है। **प्रतिदिन किये जा रहे सभी छह आवश्यकों में दुष्कृतगर्हा-सुकृत-अनुमोदन व चतुःशरण है। सामायिक में सुकृत अनुमोदना है, चउविसत्थो व वन्दन में चतुः शरण गमन है तथा प्रतिक्रमण में दुष्कृत-गर्हा है।** राई-देवसि प्रतिक्रमण में भी पुनः-पुनः दुष्कृतगर्हा की जाती है। इरियावहिय सूत्र द्वारा, वंदितु सूत्र द्वारा तथा 'आयरिय उवज्झाए' आदि द्वारा बारबार पापों का पश्चात्ताप किया जाता है।

परदोष दर्शन के स्वभाव को छोड़ने पर ही स्व-दोष को देख व जान सकते हैं। अनादि से पर-दोष-दर्शन की आदत को छोड़ना होगा। विकथा व निन्दा की प्रवृत्ति को त्यागना होगा। परदोष-दर्शन में ही अभी तक अपनी प्रगति मान रखी थी। परमात्मा से प्रार्थना करें कि हम स्वदोषों को देख सके। **राग का नाश दुष्कृत-गर्हा से, द्वेष का नाश सुकृत-अनुमोदन से व मोह का नाश चतुःशरण गमन से होगा।** अपने में अज्ञान भरा हुआ है, ऐसा ज्ञान न होने के कारण ही अभिमान पैदा होता है। स्वयं की अज्ञान दशा के ज्ञान से अभिमान नष्ट हो जाएगा। परमात्मा के सामने १४ पूर्वी जैसे ज्ञानी भी स्वयं को अज्ञानी मानते हैं। कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य जी भी वीतराग परमात्मा के समक्ष



स्वयं को पशुतुल्य समझते हैं। परमात्मा की कृपा बिना दुष्कृतगर्हा सम्भव नहीं है। दुष्कृत-गर्हा से पंच-परमेष्ठी के अनन्त गुणों का ज्ञान होगा। सर्वगुणों से युक्त व सर्वदोषों से रहित परमात्मा के दर्शन हेतु अनन्तानुबन्धी कषायों को नष्ट करना आवश्यक है।

जगत् में हर समय चार मंगलकारी पदार्थ (अरिहन्त-सिद्ध-साधु व धर्म) महामंगल कर रहे हैं। भाव मंगल को पाने के लिए ही नाम, स्थापना व द्रव्य अरिहन्तों की जगत् में उपस्थिति है। जगत् में सर्वश्रेष्ठ आलम्बन प्रभु-प्रतिमा का है। प्रभु-प्रतिमा का आलम्बन कायोत्सर्ग व ध्यान में भी कर सकते हैं। कायोत्सर्ग में काया से स्थिर, वाणी से मौन व मन से प्रभु-प्रतिमा के ध्यान में लीन बनना चाहिए। १२वें गुणस्थानक की प्राप्ति तक प्रभु-प्रतिमा का आलम्बन आवश्यक है। अशुभ-आलम्बनों को त्यागने के लिए ही शुभ आलम्बन है। प्रभु-आज्ञा का विचार धर्मध्यान है। नरक-निगोद के दुःखी जीवों पर करुणा का विचार व दुष्कृतगर्हा अपाय-विचय का प्रकार है।

परमात्मा के ५ कल्याणक जगत् के जीवों पर कितना महान् उपकार करते हैं। परमात्मा के कल्याणकों के समय सर्वजीवों को सुख व का अनुभव होता है। 'नमो अरिहंताणं' का 'अर्हत्' शब्द परमात्मा के च्यवन व जन्म-कल्याणक को सूचित करता है। 'नमो लोए सब्साहूणं'-परमात्मा की मुनि अवस्था-दीक्षा कल्याणक को सूचित करता है। परमात्मा केवलज्ञान के बाद तीर्थ की स्थापना करते हैं, धर्मोपदेश प्रारम्भ करते हैं-इस प्रकार वे पाठक बनते हैं-अतः 'नमो आयरियाणं व नमो उवज्झायाणं' केवलज्ञान कल्याणक का निर्देश करता है तथा 'नमो सिद्धाणं' परमात्मा की सिद्धावस्था-निर्वाण-कल्याणक को सूचित करता है।



## भव-भ्रमण का मूल

चैत्र सुदी ५ २०३२

दि. ५ एप्रिल १९७६

महावीर परमात्मा द्वारा स्थापित यह तीर्थ पंचम काल के अन्त तक रहने वाला है। २१००० वर्ष तक महावीर परमात्मा का यह शासन है, जिसके अभी लगभग २५०० वर्ष पूर्ण हुए हैं। महावीर परमात्मा के निर्वाण के २५०० वर्ष बाद भी हमें जिनशासन उसी रूप में प्राप्त हुआ है, यह अपना परम सौभाग्य है। जिनशासन का सार नवकार है। नवकार व नवपद का क्षीर-नीर की भाँति एक विशिष्ट सम्बन्ध है। नवकार नवपद से युक्त है व नवपद नवकार से युक्त है। नवपद का प्रत्येक पद अन्य पदों से युक्त है। एक अरिहन्त पद अन्य समस्त पदों से युक्त है। अरिहन्त पद सर्वोत्कृष्ट पद होने पर भी उनकी पूजा व भक्ति हेतु अन्य पदों की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

श्रद्धावान् व जितेन्द्रिय श्रावक ही स्थान आदि योगों में स्थिर बन सकता है। स्थान योग में स्थिरता आने के बाद ही वर्ण आदि योग में स्थिरता व शुद्धता आ सकती है। जैसे मलिन वस्त्र को साफ करने हेतु साबुन व शुद्ध जल की आवश्यकता होती है, वैसे ही पाप प्रवृत्ति से मलिन बने हुए अपने चित्त को शुद्ध व स्थिर करने के लिए स्थान-योगादि जल व नवकार रूप साबुन की आवश्यकता है।

आलम्बन योग के तीव्र अभ्यास के बाद ही अनालम्बन योग की प्राप्ति होती है। जैसे-कुम्हार के चक्र को प्रथम दण्ड की सहायता से तेजी से घुमाने पर, फिर वह दंड बिना भी उसी गति से घूमता रहता है वैसे ही चित्त को आलम्बन योग में लम्बे समय तक स्थिर बनाये रखने पर, चित्त अनालम्बन योग में प्रवेश कर सकेगा। जैसे-भोजन करने से क्षुधा की तृप्ति होती है, वैसे ही आलम्बन योग के तीव्र अभ्यास से अनालम्बन योग प्राप्त होता है।

जगत् की समस्त शुद्धात्माओं का समावेश नवकार में हो जाता है। नवकार अपने भव्यत्व को पकाता है। नवकार के ६८ अक्षर श्रुतज्ञान से युक्त हैं-जिनमें वर्ण योग है। नवकार के स्मरण से उत्तम पुरुषों की स्तुति होती है। गुणी के गुण के अनुमोदन बिना गुण की प्राप्ति सम्भव नहीं है। नवकार में नवपद है-'एसो पंच नमुक्कारो' में सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन है तथा 'सब पावप्पणासणो' में सम्यक्चारित्र है। चारित्र का फल सर्व पाप का नाश है। सर्वमंगलों में सर्वश्रेष्ठ मंगल तप है-अतः सम्यग् तप 'पढमं हवइ मंगलं' से



स्पष्ट है। नवकार के शेष चार पद चूलिका हैं, जिसमें पंच परमेष्ठी के नमस्कार का फल बताया गया है। परमात्मा के च्यवन कल्याणक समय से ही, लोकोत्तर भावना 'सवि जीव करुं शासनरसी' का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।

भव-भ्रमण का मूल मिथ्यात्व है तथा मुक्ति का मूल अपना सम्यक्त्व है। चार शरण्य समस्त दुष्कृतों से रहित हैं तथा सर्व सुकृतों से युक्त हैं। स्वदोषदर्शन बिना परगुणप्रशंसा नहीं आ सकती है। स्वदोष के कारण ही हम परगुण को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। दोष की प्रवृत्ति का अपना सहज स्वभाव बना हुआ है, अतः उस दोष को रोकने में हम असमर्थ हैं। दोष को स्वीकार करने के बाद दोष लम्बे समय तक टिक नहीं सकता है। पर-पीड़ा दुष्कृत है अतः दृष्टतर्हर्हा का सच्चा उपाय परोपकारवृत्ति का प्रारम्भ है। परोपकारवृत्ति से सच्ची दुष्कृतर्हर्हा होगी और दुष्कृतर्हर्हा होने पर सुकृत अनुमोदन होगा। स्वयं के बड़े से बड़े गुण को भी छोटा मानना चाहिए तथा पर के छोटे से छोटे सुकृत को भी बड़ा मानकर उसकी पुनः प्रशंसा व अनुमोदना करनी चाहिए।

चतुःशरण की प्राप्ति हेतु दुष्कृतर्हर्हा व सुकृत-अनुमोदन अत्यावश्यक है। महान् गीतार्थ कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी भी प्रतिदिन प्रभु के समक्ष स्वकृत दुष्कृतों की गर्हा करते थे। परमात्मा की इस आज्ञा के पालन से परम आनन्द का अनुभव होता है। मन के अनावश्यक भ्रमण को रोकने हेतु चतुःशरणगमन अत्यन्त आवश्यक है।

दुष्कृतर्हर्हा अर्थात् स्वयं की अयोग्यता का स्वीकार तथा सुकृत अनुमोदन अर्थात् 'मुझ से योग्य अनेक जीव हैं' ऐसा स्वीकार होना। चतुःशरण अर्थात् जगत् की समस्त उत्तम आत्माओं की शरण स्वीकार करना। **दुष्कृतर्हर्हा से राग का नाश, सुकृत अनुमोदन से द्वेष का नाश व शरणगमन से मोह का नाश होता है।** भगवान की शरण अपने उपादान को योग्य बनाने के लिए है।

अरिहन्त प्रभु की जिस-जिस अवस्था की हम अनुमोदना करते हैं, वह अवस्था हमें प्राप्त होती जाती है। भगवान तो कृतकृत्य हैं, सर्वगुणों से युक्त हैं, वे अपने लिए आदर्श हैं, अतः उनकी भक्ति से अपने को लाभ है, अपने ही आत्मगुणों का विकास व प्रकटीकरण होता है। परमात्मा की भक्ति परमात्मा को खुश करने के लिए नहीं है, बल्कि अपने ही आत्मविकास के लिए है, परमात्मा की दृष्टि कमठ व धरणेन्द्र पर भी समान थी।

स्नात्र महोत्सव द्वारा परमात्मा के जन्मादि कल्याणकों का यहाँ रहते स्मरण कर, उस कल्याणक का अनुमोदन द्वारा लाभ उठा सकते हैं। परमात्मा के जन्म से राज्य तक की अवस्थाओं का वर्णन परमात्मा की पिण्डस्थ अवस्था के चिन्तन से कर सकते हैं। प्रभुप्रतिमा के दर्शन द्वारा परमात्मा के ५ कल्याणकों का, पिण्डस्थ-पदस्थ व रूपातीत अवस्थाओं का चिन्तन कर सकते हैं।



चैत्र सुदी ६ २०३२

दि. ६ एप्रिल १९७६

कर्मसत्ता की तरह जगत् में धर्मसत्ता भी अनादि से है। शुभाशुभ कर्म जैसे अपने फल को नहीं बदलते हैं, वैसे ही धर्म भी अपने फल को नहीं बदलता है। अपने को तपादि करने की जो शक्ति मिली है, उसमें कारणभूत अपने पूर्वजों द्वारा डाले हुए संस्कार हैं। सर्वजीवों के कल्याण की भावना को अरिहन्त परमात्मा मानवभव में साकार करते हैं।

नवपद यह जिनशासन स्वरूप है। नवपद तीर्थ स्वरूप है। नवपद में जिनशासन है, शासन के स्थापक, शासन के आराधक, आराधना का फल व शासन की आराधना नवपद में है। नवपद में तीर्थ, तीर्थपति, तीर्थ के आराधक, तीर्थफल व तीर्थसेवा भी है। अरिहन्त परमात्मा तीर्थ व शासन के स्थापक हैं, सिद्ध परमात्मा शासनसेवा के फल हैं, आचार्य-उपाध्याय व साधु, शासन के आराधक हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र व तप शासन की आराधना हैं।

नवपद में-साधना के **मार्गदर्शक** अरिहन्त परमात्मा हैं।

नवपद में-साधना के **साधक** आचार्यादि साधु भगवन्त हैं।

नवपद में-साधना के **फल** सिद्ध परमात्मा हैं।

नवपद में-**साधना** रूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र व तप हैं।

★ नवपद में-देव रूप अरिहन्त व सिद्ध परमात्मा हैं।

★ नवपद में-गुरु रूप आचार्य-उपाध्याय व साधु भगवन्त हैं।

★ नवपद में-धर्म रूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र व तप हैं।

नवपद के समस्त पद शाश्वत हैं, जगत् में नवपद की सदा उपस्थिति है। नवपद ओली की आराधना भी शाश्वत है। नवपद-ओली की सर्वश्रेष्ठ आराधना का उत्तमोत्तम उदाहरण 'श्रीपाल व मयणा सुन्दरी' का है, जिन्होंने नवपद की अपने जीवन में बहुत ही सुन्दर आराधना की थी। इसी कारण प्रत्येक चैत्र-आसो माह की ओली में श्रीपाल व मयणा को याद करते हैं, उनका (श्रीपाल-मयणा का) चरित्र पढ़ते व सुनते हैं। नवपद में नाद रूप सम्यग्दर्शन, बिन्दु रूप सम्यग्ज्ञान, कला रूप सम्यक्चारित्र व ज्योतिरूप सम्यक् तप हैं। नवपद व सिद्धचक्र के मध्य में रहे हुए 'अर्ह' में जगत् की समस्त साधनाओं का



समावेश हो जाता है ।

'अर्ह' में वर्णमाला के समस्त ५२ अक्षरों का समावेश हो जाता है, जो सम्यग्दर्शन का सूचक है । नवपद के ध्यान में एकाग्रता लाने हेतु प्रथम वैक्रिय-वाणी से प्रभु-भक्ति आवश्यक है । नवपद के मध्य में 'अर्ह' सम्यग्दर्शन रूप है । दूसरे वलय में स्वर सम्यग्ज्ञान का सूचक है । तीसरे वलय में ४८ विद्याएँ सम्यक्चारित्र की सूचक हैं । नवपद में समस्त निर्मल आत्माओं का समावेश है । अरिहन्त परमात्मा ने ४ घाती कर्मों को नाश किया है, सिद्ध परमात्मा ने समस्त ८ कर्मों का नाश किया है, आचार्यादि केवलज्ञान-प्राप्ति में उद्यत व सक्रिय हैं । सम्यग्दर्शनादि आत्मा की तन्मय अवस्थाएँ हैं ।

निर्मल आत्माओं के उपयोग में अपना ध्यान रहने से अपनी आत्मा निर्मल बनती है । उपयोग को निर्मल बनाने हेतु अशुभ आलम्बन को छोड़ शुभ आलम्बन लेना चाहिए । जैसे-गड्ढर का गन्दा पानी भी गंगा में मिलने से स्वच्छ व पवित्र बन जाता है, वैसे ही मोह से गन्दी बनी हुई आत्मा को, शुभ आलम्बन रूप गंगा के पानी में मिलाने से अपनी आत्मा भी शुद्ध बन जाती है ।

नवपद कल्पतरु-चिन्तामणि रत्न से भी बढ़कर है, जिसकी आराधना से श्रीपाल का कोढ़ जैसा भयंकर रोग भी नष्ट हो गया ।

योग्य आत्माएँ सीप स्वरूप हैं, तो जिनवाणी स्वाति नक्षत्र की वर्षा है, धर्म मोती स्वरूप है । अर्थात् जिनवाणी रूप वर्षा को ग्रहण कर सुयोग्य आत्माएँ मोती रूप धर्म प्रकट करती हैं, नवपद में प्रथम ५ पद धर्मी हैं, शेष ४ पद धर्म रूप हैं । धर्म के अन्य ४ प्रकार-दान-शील-तप और भाव हैं । दान-शील व तप धर्म की आराधना, भाव धर्म की प्राप्ति के लिए है । भावधर्म सेनापति रूप है तो दान-शील व तप धर्मसैनिक रूप हैं । **दान से निर्मलता, शील से पवित्रता तथा तप से तन्मयता पैदा होती है ।**

परमात्मा सर्वजीवों के संरक्षक हैं, अतः उनकी आराधना व भक्ति हेतु सर्वजीवों को अभय देना आवश्यक है । **अभयदान दिये बिना ध्यान में स्थिरता असम्भव है । शील-सदाचार पालन बिना एकाग्रता नहीं आती है तथा तप के बिना तन्मयता नहीं आती है ।** ओली अनुष्ठान में दान-शील व तपधर्म भी है, यह विशुद्ध धर्म, भाव-धर्म को पैदा करता है । दान की प्रवृत्ति धन से और तप व शील का पालन काया से होता है तथा भावधर्म की उत्पत्ति मन में होती है । मन की स्थिरता हेतु शुभालम्बन आवश्यक है । शुभालम्बन से चित्त की एकाग्रता आती है । मन को स्थिर, केन्द्रित, तन्मय व निर्मल बनाने के लिए नवपद

भक्ति आवश्यक है । **नवपद के साथ अपना सजातीय सम्बन्ध है तथा शरीर के साथ विजातीय सम्बन्ध हैं ।** नवपद के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही उचित है ।

नवपद के ध्यान हेतु अरिहन्तादि के द्रव्य-गुण व पर्याय को याद करना चाहिए । नवपद में मुख्य अरिहन्त व शेष अरिहन्त की अवस्थाएँ हैं । अरिहन्त परमात्मा की '**सवि जीव करुं शासन रसी**' की भावना मानव भव में साकार होती है । परमात्मा के च्यवन के साथ ही सर्व जगत् में प्रकाश फैल जाता है । अरिहन्त परमात्मा जन्म से ही मति, श्रुत व अवधिज्ञान से युक्त होते हैं । दीक्षा समय चतुर्थ मनः पर्यवज्ञान व कड़ी साधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर सम्पूर्ण जगत् में ज्ञान का प्रकाश फैलाते हैं ।



चैत्र सुदी ७ २०३२

दि. ७ एप्रिल १९७६

**शोभा नराणां प्रियसत्यवाणी, वाण्याश्च शोभा गुरुदेवभक्तिः ।****भक्तेश्च शोभा स्वपरस्य बोधः, बोधस्य शोभा समता च शान्तिः ॥**

**अर्थ-**मानवजीवन की शोभा-सुन्दरता सत्य व प्रिय वाणी में है, वाणी की शोभा वीतराग देव व निर्ग्रथ गुरु की स्तुति में है। भक्ति की शोभा स्व-पर का बोध है तथा बोध की शोभा समता व शान्ति है।

आत्म-स्वरूप की अज्ञानता के कारण ही जीव संसार में दुःखी होता है। जब तक जीव को स्वयं की आत्म-शक्ति का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता है, तब तक वह कर्मसत्ता के अधीन रह कर अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है। आत्मस्वरूप का ज्ञान कराने में परमात्मा की वाणी ही सहाय करती है। महाकरुणा-निधान महावीर प्रभु ने जगत् के सर्व जीवों के कल्याण हेतु तीर्थ की स्थापना की थी। **आत्म-स्वरूप का ज्ञान कराने में परमात्मा का यह तीर्थ ही महान् उपकार करता है।** महा करुणा निधान महावीर परमात्मा ने स्वयं के निर्वाण के पूर्व भी छद्म तप की आराधना सहित भव्य जीवों के उद्धार के लिए लगातार सोलह प्रहर तक मधुर वाणी से देशना दी थी। कितनी महान् करुणा थी तीर्थपति महावीर प्रभु में ! उनकी महान् करुणा का वर्णन करना अशक्य है।

तीर्थ की भक्ति से जीव तीर्थकर पद प्राप्त करता है। आज तक जितने भी तीर्थकर परमात्मा हुए हैं, उन्होंने अपने पूर्व भवों में तीर्थ की भक्ति की थी। **यह तीर्थ सदा शाश्वत है और तीर्थकर पद की भी जननी है।** इसी कारण तीर्थकर परमात्मा धर्म-देशना प्रारम्भ करने के पूर्व इसी तीर्थ को '**नमो तित्थस्स**' कहकर प्रणाम करते हैं। तीर्थकर परमात्मा भी तीर्थ के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं।

परमात्मा की आज्ञा भी तीर्थ स्वरूप है। तीर्थ की सेवा बिना परमात्म तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है। तीर्थकर परमात्मा तीर्थ के स्थापक है, अतः उनकी पूजा-भक्ति किये बिना तीर्थ की सेवा नहीं हो पाती है। स्पष्ट है, तीर्थकर परमात्मा की पूजा-भक्ति किये बिना तत्त्व की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है।

तत्त्व की प्राप्ति हेतु तीर्थकर परमात्मा के प्रति कृतज्ञता का भाव अत्यावश्यक है। क्योंकि तत्त्व को बतानेवाले तीर्थकर परमात्मा ही है। **कर्मक्षय की अपेक्षा सिद्ध परमात्मा, अरिहन्त परमात्मा से भी बढ़कर हैं, क्योंकि सिद्ध परमात्मा ने सम्पूर्ण अष्ट कर्मों का नाश किया है। परन्तु परोपकार व पुण्य की अपेक्षा अरिहन्त परमात्मा, सिद्ध परमात्मा से भी बढ़कर हैं।** मुख्य विशेषता तो यही है कि जगत् के जीवों को सर्वप्रथम सिद्धि-पद का मार्ग भी अरिहन्त परमात्मा बताते हैं। इसी कारण अरिहन्त परमात्मा का अपने ऊपर महान् उपकार है। जगत् की सर्व जीव-राशि के कल्याण की उत्कृष्ट भावना मात्र अरिहन्त परमात्मा को होती है। लोक-व्यवहार में उपकारी माता-पितादि के प्रति कृतज्ञ भाव पैदा करने वाला ही लोकोत्तर परमोपकारी अरिहन्त परमात्मा के प्रति कृतज्ञता पैदा कर सकता है। अरिहन्त परमात्मा योग और क्षेम कर अपने पर महान् उपकार करते हैं। अपने आत्मगुणों को प्रकट कराने में सहयोग करते हैं तथा मिले हुए आत्मगुणों की रक्षा भी करते हैं। इस प्रकार योग-क्षेम कराने में अरिहन्त परमात्मा ही सहायता करते हैं। परमात्मा कृतकृत्य होने पर भी सर्वजीवों के कल्याण हेतु धर्मदेशनादि देते हैं।

द्वादशांगी व समस्त मंत्र ५२ अक्षरमय है। गणधर भगवन्त भी इस ब्राह्मी-लिपि को '**नमो बंभिलिवीए**' कहकर प्रणाम करते हैं। ब्राह्मी लिपि को सर्वप्रथम सीखाने वाले ऋषभदेव भगवान हैं, उन्होंने सर्वप्रथम ब्राह्मी को लिपि सीखाई थी। तथा सुन्दरी को सर्वप्रथम गणित सीखाया था। वर्णमाता का उपयोग आज तक समस्त तीर्थकर परमात्माओं ने अपनी वाणी से किया है। वर्णमाता का प्रत्येक अक्षर श्रुतज्ञानमय है। श्रुतज्ञान की भक्ति से ही अन्त में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। ध्यान तथा चिन्तन के लिए भी वर्णों का आलम्बन लेना पड़ता है। वर्णाक्षरों के प्रति अनादर भाव होने के कारण ही अपना आध्यात्मिक विकास रुका हुआ है।

परमात्मा के जन्म-समय असंख्य सम्यग्दृष्टि देव प्रभु के नाम का उच्चारण कर तथा मेरुशिखर पर अति हर्षोल्लास के साथ प्रभु-जन्माभिषेक व भक्ति कर अपने आपको धन्य मानते हैं। परमात्मा के जन्म के समाचार सुनते ही असंख्य देवी-देवता प्रभु का जन्मोत्सव मनाने हेतु, अपने अपने वाहन लेकर इस प्रकार भागते हैं, मानो आज उन्हें सम्पूर्ण विश्व की सत्ता प्राप्त हो गई है। प्रभु के मुख-दर्शन हेतु देवी-देवताओं में इतनी तीव्र उत्कण्ठा होती है कि उससे सारे देवलोक में हलचल मच जाती है।



अरिहन्त परमात्मा की वाणी ही जगत् के सर्व तत्त्वों को सत्य रूप में प्रकट करती है। सत्य व प्रिय वाणी ही मानवदेह की शोभा है। कठोर व अप्रिय वचन बोलने वाला मानवदेह में पशु समान है। वर्णमाता के प्रति कृतज्ञ भाव प्रकट करने हेतु सत्य व प्रियवाणी का उच्चारण आवश्यक है। सत्य व प्रिय वाणी से ही सन्त-समागम, सद्गुरु-योग की प्राप्ति होती है। वर्णमाता के प्रति कृतज्ञता भाव लाने पर ही देव-गुरु की भक्ति का अपने जीवन में प्रवेश होगा। देव-गुरु की नमस्कृति पुण्य माता को प्राप्त कराती है।

सिद्धों का स्थान शाश्वत, अविनाशी व अरूपी है। सिद्धों का ज्ञान १४ राजलोकमय है। सिद्ध परमात्मा की सिद्ध शिला पर स्थिति शाश्वत है। सिद्ध परमात्मा की दृष्टि सदा १४ राजलोक पर है, अतः सिद्ध परमात्मा अपनी सर्व प्रवृत्तियों को देखते हैं। सिद्ध की साक्षी सदा काल व प्रत्येक समय में है। ऐसी श्रद्धा होने पर दुष्कृत करने में संकोच पैदा होगा, दुष्कृत-भय पैदा होने पर ही सुकृत-कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। अरिहन्त परमात्मा की प्रीति-भक्ति व श्रद्धा तथा आज्ञापालन होने पर सिद्ध परमात्मा का ध्यान सम्भव है।

चैत्र सुदी ८ २०३२

दि. ८ एप्रिल १९७६

आज हमें जिनशासन सहित अतिदुर्लभ पदार्थों की प्राप्ति हुई है। नमस्कार-महामंत्र का विधि सहित एक लाख बार जाप करने का अवसर अनुष्ठान प्राप्त हुआ है, वह इस संसार में अति दुर्लभ है। जिसकी प्राप्ति में देवाधिदेव वीतराग परमात्मा का अनुग्रह है। अपनी आत्मा के सर्वोच्च उपकारी परमात्मा है। धर्म तथा मोक्ष का पुरुषार्थ होने पर भी यदि उसके साथ 'अहं करोमि' 'मैं करता हूँ' की भावना है-तो वह धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ होने पर भी हम अपना पतन ही करते हैं। अतः धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ में भी यह आवश्यक है कि प्रथम अहं भाव का नाश करे। आज तक जो अपना भव-भ्रमण हुआ है, उसमें मूलभूत कारण अहं भाव है-यही सहजमल व मिथ्यात्व की वृद्धि करता है-और जीव को नाना प्रकार से इस भव अटवी में नचाता है। इस अनादि से दृढ़ बने स्वभाव को बदलने हेतु भारी पुरुषार्थ व दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है।

अष्ट कर्मदल में मोहनीय सबसे बलवान् है। इसी का जीव पर अधिकार रहा हुआ है। इसको जीतने वाला आसानी से शेष कर्मों का नाश कर सकता है। मोहनीय कर्म के बंध का काल भी उत्कृष्ट है। जीव दो घड़ी के अशुभ परिणामों से ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपम तक का मोहनीय कर्म बाँध सकता है।

मोहनीय कर्म के बंध को रोकने हेतु जगत् में जिन-वाणी ही समर्थ है। रोग भयंकर है-तो उसकी व्याधि भी बहुत भयंकर है। जिनवाणी-श्रवण से अपने में भी सत्य व प्रिय वाणी का प्रवेश होता है। सत्य व प्रिय वाणी के बल से हम नवपद की भक्ति में तन्मय बनकर, नवपदमय बन सकते हैं।

अक्षर दो प्रकार के हैं - (१) संज्ञाक्षर (२) व्यंजनाक्षर। जो लिखे जाते हैं-वे संज्ञाक्षर हैं तथा जो मुख से उच्चरित किये जाते हैं-वे व्यंजनाक्षर हैं। तीर्थंकर परमात्मा की वाणी भी व्यंजनाक्षर रूप बनती है तभी दूसरों को बोध होता है। पाँच ज्ञानों में अपेक्षा से श्रुतज्ञान ही अधिक कीमती है। क्योंकि श्रुतज्ञान के बिना केवलज्ञान सम्भव नहीं है। **केवलज्ञान का मूल श्रुतज्ञान है**



**। वर्णमाला के सभी अक्षरों का उच्चारण परमात्मा के मुख से होने के कारण सभी अक्षर पूजनीय हैं ।**

ज्ञान-वृद्धि का साधन ज्ञान और ज्ञानी की पूजा है । ज्ञान की पूजा से तात्पर्य ज्ञान के साधनों का उचित प्रयोग करें । ज्ञान के साधनों को व्यर्थ नष्ट न करे । ज्ञान की आशातना से बचे । ज्ञानी व ज्ञान के साधनों की आशातना से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है, जिससे अपने ज्ञान का विकास अवरुद्ध हो जाता है । ज्ञान के साधनों का नाश करना अर्थात् स्वयं के हाथ से स्वयं के ज्ञानगुण को नष्ट करना है । श्रुत के दो प्रकार हैं-(१) द्रव्य श्रुत (२) भाव श्रुत । ज्ञान के साधन कागज-कलम पुस्तक आदि द्रव्य श्रुत हैं ।

नमस्कार रूपी पुण्य माता हमें श्रुतचक्षु देती है, जिससे देव-गुरु के प्रति भक्ति पैदा होती है । ज्ञान के साधनों की आशातना संज्ञाक्षर की आशातना है तथा झूठे मुँह बोलने आदि से व्यंजनाक्षर की आशातना होती है । उचित स्थान पर सत्य व प्रिय वचन बोलने से व्यंजनाक्षर की भक्ति होती है । असत्य व अप्रिय वचन बोलने से पर को दुःख तथा क्रोध व मान पैदा होता है । इससे उसके भाव-प्राणों की हिंसा होती है । सत्य व प्रिय वचन बोलने से अन्य को तो आनन्द होता है, साथ में स्वयं के गुणों में भी वृद्धि होती है । पूर्व भवों में पुण्य माता नवकार की भक्ति की हुई होने के फलस्वरूप ही हमें इस भव में नवकार की प्राप्ति हुई है ।

नमस्कार द्वारा सदगुरु की प्राप्ति होती है । सदगुरु वही है, जो हमें सुदेव व सुधर्म की पहिचान करावे । जीवन का विकास सुदेव, सुगुरु व सुधर्म इन तीनों तत्वों से होती है मात्र एक या दो से नहीं । मोक्ष प्रारम्भ से अंत तक की भूमिका को प्राप्त कराने में सुगुरु ही सहाय करते हैं । मोक्ष की प्रारम्भिक भूमिका को दृढ़ किये बिना आगे की भूमिका को प्राप्त नहीं कर सकते हैं । नमस्कार मंत्र ने अनंतों को अरिहन्त व सिद्ध पद प्रदान किया है । नमस्कार अपने सर्व विघ्नों का नाश करता है । नमस्कार यह धर्म का बीज और पुण्य का सर्जक है । पुण्य के बल से ही हमें वाचिक व मानसिक शक्ति मिली है । पुण्य अर्थात् जो आत्मा को पावन व पवित्र करे । पुण्य का सर्जन पाप का विसर्जन करता है । पुण्य का सर्जन परार्थवृत्ति से तथा पाप का सर्जन स्वार्थवृत्ति से होता है ।

**प्रश्न :** नवकार जाप में परोपकार किस रूप में है ?

**उत्तर :** जगत् में परोपकार के उत्कृष्ट भंडार अरिहंतादि पंच परमेष्ठी

हैं । परोपकार वृत्ति का भाव कृतज्ञता से प्राप्त होता है । 'जिसको नमस्कार करेंगे-वैसे ही गुण-दोष अपने में आयेंगे ।' इस उक्ति के अनुसार पंच परमेष्ठी, जो परोपकार के भंडार हैं उनको नमस्कार करने से अपने में परोपकार गुण अवश्य आयेगा । पंच परमेष्ठी के प्रति कृतज्ञता भाव आने पर अपने में भी अवश्य परोपकार वृत्ति पैदा होगी ।

मयणासुन्दरी बताती है कि पुण्य से विनय, विवेक, चित्त की प्रसन्नता, शीलयुक्त देह तथा परम पद भी प्राप्ति होता है । सुरसुन्दरी बतलाती है कि पुण्य से धन-यौवन-चतुराई-निरोगी काया व मनपसन्द व्यक्ति का मेल प्राप्त होता है । सुरसुन्दरी व मयणा सुन्दरी दोनों ने अपनी-अपनी मनपसंद वस्तु का फल बताया है, पुण्य से सब कुछ मिलता है परन्तु दोनों ने अपनी-अपनी आन्तरिक भूमिका अनुसार बताया है ।

तीर्थकर परमात्मा के विरह काल में आचार्य भगवन्त ही पंचाचार का सुन्दर पालनकर जगत् के जीवों का कल्याण करते हैं, तीर्थकर रूपी सूर्य के अभाव में आचार्य रूपी दीपक ही जगत् को सही राह बताते हैं ।







15

वर्णमाता

चैत्र सुदी ९ २०३२

दि. ९ एप्रिल १९७६

जगत् में ज्ञानियों की दृष्टि में अतिदुर्लभ जिनवाणी हमें प्राप्त हुई है । जिनवाणी से ही तत्त्व का ज्ञान, तत्त्व की श्रद्धा तथा आत्मानुभव होता है । धर्म के विभिन्न रहस्यों की जानकारी जिनवाणी-श्रवण से होती है । **जिनशासन को टिकाने का एक मजबूत स्तम्भ जिनवाणी है । जिनवाणी से अपनी वाणी पवित्र बनती है ।** आत्मा का स्वभाव ज्ञानमय है, परन्तु इस संसार के भव-भ्रमण में मोह राजा रूपी चोर आत्मा के ज्ञानगुण को लूट लेता है । आत्मा का स्व-स्वभाव में आना ही मोक्षसुख का अनुभव है, स्व-स्वभाव से विचलित होना, यही संसार है । आत्मा को स्व-स्वरूप में लाने हेतु जिनवाणी ही सहाय करती है ।

जैसे चाबी भरने से घड़ी का काँटा गोल-गोल घूमता है, वैसे ही राग-द्वेष रूपी चाबी भरने के कारण यह जीव घड़ी के काँटे की तरह इस भयंकर संसार में गोल-गोल घूमता रहता है ।

**लौकिक धर्म में माता-पिता की पूजा प्रधान है । लौकिक धर्म के सम्पूर्ण पालन के बाद लोकोत्तर धर्म की प्राप्ति होती है ।** देवगुरु की भक्ति से ही अपने जीवन में मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है । कलिकालसर्वज्ञ आचार्य भगवन्त हेमचन्द्राचार्य जी भी स्वयं को प्रभु के सामने पशु तुल्य समझते थे, कितनी महान् लघुता थी गीतार्थ गुरुदेव में ! देवगुरु की भक्ति ही अपने आध्यात्मिक देह का निर्माण करती है । व्यवहार से हम जैसे-जैसे देव गुरु की भक्ति करते जाते हैं, वैसे-वैसे अपनी आत्मा को निश्चय से देव गुरु की सच्ची पहिचान होती जाती है । भगवान् अपने भक्त को भी भगवान् बना देते हैं, आज तक जितने भी अरिहन्त परमात्मा हुए हैं, उन सभी ने अपने पूर्व भवों में पहले हो चुके अरिहन्तों की उत्कृष्ट भक्ति की है । अरिहन्त की भक्ति भक्त को भी अरिहन्त पद दे देती है । परमात्मा अपनी अशुद्ध आत्मा को शुद्ध करने का कार्य करते हैं । अरिहन्त परमात्मा जगत् के जीवों के प्राण व त्राण हैं । जगत् के अन्य सभी माता-पिता-गुरु-मित्र आदि का उपकार भी अरिहन्त परमात्मा को

आभारी है । पूर्व भवों में की गई उत्तम आराधना के फलस्वरूप ही हमें मानव भव प्राप्त हुआ है ।

अरिहन्त परमात्मा की भक्ति से ९ पुण्यों की प्राप्ति होती है । बाह्य जीवन जीने हेतु अन्न-जल-वस्त्र-आसन व आश्रय स्थल इन पाँचों की जरूर होती है वैसे ही आध्यात्मिक जीवन जीने हेतु इन पाँचों के दान की जरूरत पड़ती है । अन्नदान से जीवों को अभय देने की शक्ति प्राप्त होती है ।

**'सेवन कारण पहली भूमिका रे, अभय अखेद व अद्वेष !'** आध्यात्मिक जीवन की प्रथम सीढ़ी है सर्व जीवों को अभय प्रदान करे । कोई भी जीव अपने से भयभीत न बने अर्थात् सर्व जीवों के साथ मैत्री, प्रमोद, करुणा तथा माध्यस्थता युक्त प्रेमभाव हो ।

आसनदान अर्थात् सम्मान दान । आसनदान से विनय गुण की प्राप्ति होती है । विनयगुण के भंडार उपाध्याय भगवन्त हैं अतः आसनदान से उपाध्याय पद की प्राप्ति होती है ।

अनेक तीर्थकरों को समकित प्राप्ति में निमित्त साधु भगवन्त हैं । आश्रयदान से अपने को भी आश्रय मिलता है, जहाँ सदा काल रहने को मिले, ऐसे आश्रय की प्राप्ति आश्रयदान से ही शक्य है । आश्रयदान से साधुपद की प्राप्ति होती है ।



चैत्र सुदी १० २०३२

दि. १० एप्रिल १९७६

अनन्त उपकारी जिनेश्वर परमात्मा धर्मदेशना देकर तीर्थ की स्थापना करते हैं। जगत् में जहाँ भी तीर्थ हैं, वहाँ मोक्षमार्ग है। तीर्थकर परमात्मा आज भरत क्षेत्र में देहरूप में उपस्थित नहीं है, परन्तु उनका प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था रूप तीर्थ तो उपस्थित है ! २५०० वर्ष की दीर्घावधि के बाद भी हमें मोक्षप्राप्ति की सहायभूत साधनाएँ प्राप्त हो रही हैं, उसमें तीर्थकर परमात्मा के तीर्थ का उपकार है !

परमात्मा की धर्मदेशना से तीर्थ के उपासकों में वृद्धि होती है, और अनेकानेक भव्यात्माएँ आत्म-कल्याण कर शाश्वत मोक्षसुख प्राप्त करती हैं। परमात्मा की अमृततुल्य वाणी को सुनते-सुनते ही अनेकों ने केवलज्ञान प्राप्त किया है। जिनवाणी अनन्त आत्माओं के आत्मकल्याण में हेतु बनी है। इसी कारण शास्त्रकार बारबार भार देकर यही कहते हैं कि जगत् में जिनवाणी-श्रवण अतिदुर्लभ है। अतः जिनवाणी श्रवण के प्राप्त अवसर को न चूके, जैसे इमारत के निर्माण में नींव मजबूत होना आवश्यक है, वैसे ही जीवन में धर्म रूपी इमारत को टिकाने के लिए पुण्य रूपी नींव को मजबूत करना अत्यावश्यक है। आत्मा के विकास में पुण्य सहायक है, बाधक नहीं। जो व्यक्ति या संस्था पुण्य कार्यों पर कुटाराघात कर आत्मदर्शन व मोक्षतत्त्व की बातें करती हैं, वे मात्र कल्पना है। वे आत्मविकास के बदले आत्मघात करते हैं।

मानव की शोभा सत्य व प्रिय वाणी में है। सत्य व प्रिय वाणी से देव-गुरु की भक्ति की शक्ति मिलती है। स्तुति के योग्य सुदेव-सुगुरु-सुधर्म की ही स्तुति करे, उन्हीं की प्रशंसा करे यही वाणी की शोभा व उसका फल है, निन्दा-चुगलखोरी आदि में वाणी का प्रयोग वाणी का दुरुपयोग है। देव-गुरु की स्तुति से स्व व पर का बोध होता है। "मैं कौन हूँ? तथा मेरा क्या है?" इसका बोध देवगुरु की भक्ति से होता है। स्व व पर का बोध हो जाने पर जीवन में समता व शान्ति आती है।

सद्गुरु अपने कल्याणमित्र बनकर आत्मविकास में सहाय करते हैं।

सुदेव व सुगुरु को किया गया नमस्कार अक्षय पुण्य पैदा करता है। योग्य को किया नमस्कार पुण्य को जन्म देता है तथा अयोग्य को किया नमस्कार पाप पैदा करता है। **महामंत्र नमस्कार यह पुण्य जननी माता है। देव व गुरु को किया नमस्कार अपने सम्यग्दर्शन को निर्मल करता है।**

अर्ह-यह वर्णमाता का बीज है। वर्णाक्षर के आधार पर अपना व्यवहारिक व आध्यात्मिक व्यवहार चलता है। 'अर्ह'-यह द्वादशांगी व नवपद का संक्षेप है। देवगुरु की भक्ति नवकार की विधिपूर्वक आराधना से प्राप्त होती है। पंच परमेष्ठी पदों की भक्ति हेतु ५ प्रकार के पुण्य का बंध आवश्यक है। अपने में जो कुछ तन-मन व धन की शक्ति है, उसका दूसरों के हित में उपयोग करना-यही पुण्य बंध है। प्रथम ५ पुण्य हेतु बाह्य पौद्गलिक वस्तुओं के त्याग की जरूरत होती है, जिसके त्याग की शक्ति सब में भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु उसके बाद के ४ पुण्य करने की शक्ति तो सबमें पड़ी हुई है। जगत् के सर्व जीवों का हित चिन्तन करना, मन पुण्य है, मुख से गुणीजनों की स्तुति करना, वचन पुण्य है तथा अपनी काया को शक्ति अनुसार परोपकार में लगाना, काय पुण्य है। जगत् में हो रहे समस्त पुण्य कार्यों का अनुमोदन करना नौवाँ नमस्कार पुण्य है इन पुण्य कार्यों की अपने को सुलभता से प्राप्ति होने पर भी नहीं करते हैं, यही अपनी बड़ी कमजोरी है।

मन, वचन व काया की मिली हुई शक्ति का स्वयं के लिए ही उपयोग करना अधर्म है तथा उस शक्ति को अन्य की सेवा में लगाना, यही धर्म है। मोहाधीन बने हुए अपने मन को परमात्मा को सौंप देना, यही धर्म है। स्वेच्छा को गौण कर जिनाज़ा को ही अपनी इच्छा मानकर, उसका पूरा पूरा पालन करे, तो अल्प भवों में शाश्वत सुख प्राप्त कर सकते हैं। मन का स्वभाव चंचल है-अतः उसको वश करने हेतु सद्गुरु की निश्चा अर्थात् गुरुकुलवास आवश्यक है। सद्गुरु ही अपने को मोह से मुक्त करते हैं। तीर्थकर की आत्मा को भी जब तक सद्गुरु का योग नहीं होता, तब तक वे भी लोकोत्तर धर्म को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

संकल्प बल में संकल्प का फल छिपा हुआ है। 'सवि जीव करुं शासनरसी' की तीव्र व उत्कृष्ट भावना के बल से ही, तीर्थकर परमात्मा की आत्मा को तीर्थकर पद की प्राप्ति होती है और वे तीर्थ की स्थापना कर अनेक भव्यात्माओं को संसार-समुद्र से पार उतारते हैं। अपने को अभी तक मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ इसका कारण ?



अभी तक मोक्ष पाने की तीव्र उत्कंठा नहीं जगी है। 'मुझे मोक्ष पाना ही है।' ऐसा दृढ़ संकल्प अभी मन में पैदा नहीं हुआ है। यदि मोक्ष का दृढ़संकल्प होता तो अवश्य इस संसार का त्याग कर षट्जीवनिकाय को अभयदान प्रदान कर सर्वविरति ग्रहण करने का पुरुषार्थ करते और सर्वविरति ग्रहण करने के बाद समय मात्र भी प्रमाद न कर, निरतिचार संयम हेतु मोक्ष का पुरुषार्थ करते। मोक्ष का संकल्प अवश्य मोक्ष प्रदान करता है। **इच्छा को देव-गुरु की आज्ञा के अधीन बनाना ही मोक्ष है।** प्रभु की आज्ञा में मोक्ष छिपा हुआ है। अन्न-जल से की गई वैयावच्च व भक्ति से भरत महाराजा को चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ, आदीश्वर दादा जैसे परम पिता व परम गुरु प्राप्त हुए और अन्त में त्रिलोकदीपक केवलज्ञान प्राप्त हुआ। कितनी शक्ति छिपी हुई है अन्न व जल के दान में।



## महावीर प्रभु जन्म कल्याणक

चैत्र सुदी १३ २०३२

दि. १३ एप्रिल १९७६

अनंत उपकारी महावीर प्रभु ने जगत् के सर्व जीवों के कल्याण के लिए जिन-शासन की स्थापना की ! परमात्मा के प्रत्येक कल्याणक सर्व जीवों के लिए हितकारी बनते हैं। प्रभु के जन्म समय सर्व जीव राशि को सुख की अनुभूति होती है। प्रभु का जन्म होते ही इन्द्र का सिंहासन कंपित होता है ! अपने सिंहासन को कंपित देख, इन्द्र अपने अवधिज्ञान का उपयोग करता है। अवधि-ज्ञान द्वारा परमात्मा के जन्म को जानकर इन्द्र अत्यंत आनंद का अनुभव करता है। परमात्मा के जन्माभिषेक के महोत्सव हेतु, इन्द्र महाराजा देव लोक में प्रभु जन्म के समाचार देने हेतु सुघोष घंट बजाने की आज्ञा करते हैं। घंट की आवाज देव लोक में प्रभु के जन्म का सूचक है। अतः घंट की आवाज सुनकर-प्रभु के जन्म को जानकर समग्र देवलोक के देवी-देवता अपने व्यस्त कार्यों को छोड़ प्रभु का जन्मोत्सव मनाने हेतु अपने अपने वाहनों को लेकर मेरु-पर्वत की ओर जाते हैं। प्रभु के जन्मोत्सव को देखकर अनेक भव्य आत्माएँ सम्यक्त्व प्राप्त करती हैं। प्रभु के जन्म की घड़ी इतनी उत्तम होती है कि उस समय अत्यंत घोर वेदना से पीड़ित नरक के जीवों को भी सुख की अनुभूति होती है। नरक ही नहीं, स्थावर व निगोद के जीवों को भी सुख का अनुभव होता है।

**प्रश्न** परमात्मा के जन्म समय सर्व जीवों को आनंद क्यों होता है ?

परमात्मा में सकल जीव राशि पर निःस्वार्थ प्रेम होता है। सर्व जीवों के सर्व दुःखों को दूर करने की उनकी उत्कृष्ट भावना होती है। अरिहंत परमात्मा परोपकार तथा कृतज्ञता गुण के भंडार होते हैं। परमात्मा का तथाभव्यत्व ही इस प्रकार का होता है कि उनके समान सर्व जीवों के कल्याण की भावना और किसी में नहीं होती है। व्यवहार में हमें अपने उपकारी के आगमन पर खुशी होती है, वैसे ही परमात्मा का सर्व जीव राशि के प्रति उपकार होने से तथा सर्व हितार्थ बुद्धि होने से सर्व जीवों को उनके जन्म का विशिष्ट आह्लाद होता है।



आज मात्र महावीर परमात्मा का ही जन्म कल्याणक नहीं है, यह दिन अनंत-तीर्थकरों के जन्म कल्याणक का सूचक है। अनेक तीर्थकरों के अनेक कल्याणकों पावापुरी-अष्टापद-सम्मेतशिखरजी आदि याद दिलाते हैं। परमात्मा का जीवन जन्म से ही विशिष्ट कोटि का होता है, जो सामान्य जीवों के लिए आदर्श व अनुकरणीय बनता है। माता-पिता तथा भाई के प्रति महावीर प्रभु का कितना उच्च कोटि का व्यवहार था, इससे तो हम परिचित हैं ही, मात्र भाई के आग्रह व भाई की अंतरवेदना को शांत करने हेतु २ वर्ष तक पौषधशाला में महावीर प्रभु रहे थे। परमात्मा गृहस्थाश्रम में होने पर भी चोथे गुण स्थानक की भूमिका में रहते हैं। चारित्र को ग्रहण करते समय 'करेमि भंते !' की प्रतिज्ञा करते ही वे ७ वें गुण स्थानक में प्रवेश करते हैं और चौथा मनः पर्यवज्ञान प्राप्त करते हैं। पंच-मुष्टि लुँचन के साथ-साथ वे कषायों को भी मूल से उखाड़ देते हैं।

सामायिक की प्रतिज्ञा अर्थात् सर्व जीवों को अभयदान देने की प्रतिज्ञा। समता सागर में निवास करते हुए सिद्धात्माओं के साथ संबंध जोड़ने की प्रतिज्ञा। पाप, जीव को मलिन बनाता है। पर-पीडा से स्वयं को ही कष्ट मिलता है। परमात्मा महावीर प्रभु को गृहस्थाश्रम में किसी प्रकार के अशुभकर्म का उदय नहीं आया, परन्तु चारित्र मार्ग ग्रहण करते ही अशुभ कर्म का उदय प्रारम्भ हो गया। परमात्मा पर उपसर्ग का प्रारम्भ गोवाले के उपसर्ग से हुआ और अन्तिम उपसर्ग भी गोवाल का ही रहा। भयंकर से भयंकर उपसर्ग परमात्मा पर आए, परन्तु प्रभु तो समता भाव में लीन थे, उनकी दृष्टि तो उपसर्ग करनेवाले व रक्षा करने वाले पर समान थी। अवसर्पिणी काल के २३ तीर्थकर परमात्माओं के छद्मावस्थाओं के सभी कार्यों से महावीर प्रभु के कर्म अधिक थे, फिर भी महावीर प्रभु ने मात्र १२.५ वर्ष की अवधि में ही सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर दिया। संगम देव के भयंकर उपसर्ग भी प्रभु को ध्यानावस्था से चलित नहीं कर सके। वास्तव में महावीर प्रभु समता के महासागर थे। चंडकोशिक जैसे भयंकर विषधर सर्प को भी परमात्मा ने प्रतिबोध देकर शांत किया। कितनी महान् करुणा थी तिर्यचो के प्रति।

परमात्मा शिशु अवस्था में माता का स्तन-पान नहीं करते हैं, जगत् के सर्व जीवों के प्रति वात्सल्य भाव होने के कारण उनके शरीर में रहा मांस व रक्त भी दुग्ध समान श्वेत होता है। हर काल में तीर्थकर पद को पाने वाली असंख्य आत्माएँ देव लोक या नरक में होती हैं। जिनकी यह तीव्र भावना होती है कि कब देव लोक में से छूटूँ और मानव भव पाकर तीर्थ की स्थापना कर सर्व

जीवों का कल्याण करूँ।

'देह दुक्खं-महा फलं' के सिद्धांत पर चलकर परमात्मा ने घोर उपसर्गों को सहन कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। परमात्मा कर्म के प्रति अति क्रूर बनते हैं। अपने अशुभ परिणामों से ही भारी कर्म बंध होता है, अतः उसको निकालने हेतु कठोर मार्ग अपनाना ही पड़ता है। परमात्मा स्वयं के प्रति कठोर व अन्य जीवों के प्रति दयालु हैं। परमात्मा ने उपसर्गों को सहने में कमी नहीं रखी, उपसर्गों के सहने में किसी की सहायता नहीं ली।

परमात्मा ने केवलज्ञान प्राप्त कर सर्व प्रथम अनेकांत व स्याद्वाद का पाठ जगत् के जीवों को पढाया। महावीर प्रभु ने सर्व जीवों के कल्याण हेतु तीर्थ की स्थापना की। परमात्मा महावीर प्रभु ने बताया कि 'पदार्थ उत्पन्न होता है, नाश होता है और कायम रहता है।' इस प्रकार जीवाजीवादि पदार्थों के नित्यानित्य स्वरूप को समझाकर सत्य का प्ररुपण किया। परमात्मा के अनेकांतवाद में जगत् के सर्व दर्शनों का समावेश हो जाता है।





## ध्यान माता

चैत्र सुदी १४ २०३२

दि. १४ एप्रिल १९७६

चोथी माता त्रिपदी है, जो शैलशीकरण तक पहुँचाने वाली है। अष्ट प्रवचन माता के पालन से वस्तु के द्रव्य गुण व पर्याय की अवस्था का ज्ञान हुआ। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्-** इन पदों के द्वारा गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना की 'उगमेइ वा' वस्तु उत्पन्न होती है 'विगमेइ वा' वस्तु नष्ट होती है और 'ध्रुवेइ वा' वस्तु कायम रहती है।

घाती कर्मों के नाश हेतु चोथी त्रिपदी ध्यान माता की शरण जरूरी है। महावीर परमात्मा की आत्मा को २० सागरोपम का देवायुष्य भी बंधन रूप लग रहा था, क्योंकि उनकी सदा यही तीव्र उत्कंठा थी कि कब इस देव लोक से मुक्त बनकर मानव भव प्राप्त कर, तीर्थ स्थापना कर, सर्व जीवों को दुःखों से मुक्त करुं। देवायुष्य पूर्णकर गर्भावास में आने पर भी उन्हें यह अवस्था बंधनरूप लग रही थी, क्योंकि वे सर्वजीवों का कल्याण चाहते थे। मानव जीवन पाकर पूर्ण यौवानावस्था में घाती कर्मों के नाश हेतु गृहवास का त्याग कर दिया। 12½ वर्षों तक देव व मानव कृत भयंकर उपसर्गों को सहन करते हुए तथा साथ में कठिन तप के साथ ध्यानावस्था में रहकर घाती कर्मों का नाशकर केवल ज्ञान व केवल दर्शन प्राप्त किया।

तीर्थ स्थापना के साथ ही ३० वर्ष तक अमृतमय देशना देकर अनेकानेक भव्यात्माओं का उद्धार किया। आज हमें जो धर्म प्राप्त हुआ है, उसमें परमात्मा के तीर्थ का ही उपकार है। परमात्मा का प्रत्येक वचन अति मूल्यवान है। तीर्थ यह नवकार-नव पद और नव पुण्यमय है। तीर्थ में ९ पुण्यों का भी बंध होता है। संघ के प्रत्येक जीव को दुःख से भी भव का भय अधिक लगता है। निगोद का दुःख व मोक्ष के सुख के ज्ञान से भव का भय पैदा होता है। **अविनाशी मोक्ष सुख के बदले नाशवंत संसार सुख की इच्छा आर्त ध्यान है।** संसार के प्रत्येक सुख में आदि व अंत है तथा जिसके आने पर हर्ष कम व जाने पर दुःख ज्यादा है।



## भावधर्म

चैत्र सुदी १५ २०३२

दि. १५ एप्रिल १९७६

इस भयंकर संसार में जीव को जिन-वाणी श्रवण की प्राप्ति अति दुर्लभ है। जिनवाणी श्रवण के बाद भी उसकी श्रद्धा और तदनुसार जीवन में आचरण आना अति कठिन है। तत्त्व की प्राप्ति हेतु तीर्थ की सेवा आवश्यक है जैसे भोजन बिना तृप्ति नहीं, वैसे ही तीर्थ सेवा बिना तत्त्व प्राप्ति नहीं है।

जीव का स्वभाव सुखमय होने पर भी, पुद्गल के संयोग में रहकर राग-द्वेष से जन्म-मरण के भयंकर दुःखों का सर्जन करता है। जीव स्वयं के हाथों से ही अपने भावी का सर्जन करता है। अपनी आत्मा ने आज तक अनंत काल संसार में परिभ्रमण किया है। १४ राजलोक के प्रत्येक खंड व क्षेत्र में अपना जीव भ्रमण कर चूका है। जब तक जीव का मोक्ष नहीं होगा तब तक उसका जन्म मरण चालू रहने वाला है। जन्म के साथ मृत्यु व मृत्यु के साथ जन्म तैयार खड़ा है। मात्र जिनशासन ही जीव को जन्म मरण से मुक्त कर सकता है।

मुक्ति प्रेमी जीव को मोक्ष गत की भक्ति में आनंद आता है। प्रभु भक्ति द्वारा सर्व सुकृतों का अनुमोदन तथा सर्व दोषों की गर्हा हो जाती है। प्रभु-भक्ति परमानंद का बीज है।

वर्णमाला के ५२ अक्षरों का सार नवकार रूपी ६८ अक्षर है। पंच परमेष्ठी को किया नमस्कार सम्यग्दर्शन प्राप्त कराता है। सम्यग् नमस्कार अज्ञान-मिथ्यात्व का नाशक है।

अष्ट प्रवचन माता चारित्र को पुष्ट करती है। ५ समिति में प्रवृत्ति तथा ३ गुप्ति में प्रवृत्ति-निवृत्ति है। निवृत्ति अर्थात् आत्म स्वभाव में आना। सम्यग् दर्शन से जीव में जीव बुद्धि तथा अष्ट प्रवचनमाता के पालन से जीव में शिव बुद्धि पैदा होती है।

मनोगुप्ति ध्यान स्वरूप है। प्रथम ५ समिति, काया गुप्ति व वचन गुप्ति के पालन का उद्देश्य मनोगुप्ति में लीनता प्राप्त करना है। **इच्छा का निरोध यही तप है। तप से संवर की प्राप्ति करना, यही भाव धर्म है। सम्यग् दर्शन, ज्ञान व चारित्र का लक्ष्य भावधर्म ही है।**

स्वदोष दर्शन बिना परगुण दर्शन शक्य नहीं है। पर गुण दर्शन स्वदोष का बोध कराता है। ध्यान में शुभ अध्यवसाय की स्थिरता ही सच्ची एकाग्रता है। पुद्गल की नित्यता का ज्ञान राग पैदा कराता है तथा अनित्यता का ज्ञान द्वेष पैदा कराता है। नित्यानित्य का ज्ञान ही सच्चा बोध है जिससे समत्वभाव पैदा होता है। पदार्थ के स्वरूप की अज्ञानता मोह पैदा कराती है।

